

परमार्थ निकेतन

पुस्तकालय



नित्य पाठोपयोगी

## शिवमहिम्नः स्तोत्रादि संग्रह

ब्रह्म विद् विद्द्वरिष्ठ पूज्यपाद श्री १०८  
श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द गिरि जी महाराज की  
शिष्या सुशीलाबाई अग्रवाल द्वारा पूर्णानन्द आश्रम,  
शिवालय, ऋषिकेश से पुनः प्रकाशित

तृतीयावृत्ति : ३०००

संवत् २०४० ]

महा शिवरात्रि

( सन् १९८४ )

संवत् २०४५ ]

चतुर्थी वृत्ति : ५०००

( सन् १९८८ )





नित्य पाठोपयोगी

# शिवमहिम्नः स्तोत्रादि संग्रह



ब्रह्मविद् विद्वद्वरिष्ठ पूज्यपाद श्री १०८  
श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द गिरि जी महाराज की  
शिष्या सुशीलाबाई अग्रवाल द्वारा पूर्णानन्द आश्रम,  
शिवालय, हृषिकेश से पुनः प्रकाशित

तृतीयावृत्ति : ३०००

संवत् २०४० ]

महा शिवरात्रि

( सन् १९८४ )

संवत् २०४५ ]

चतुर्थी वृत्ति : ५०००

( सन् १९८८ )



ब्रह्मविद् विद्वद्वरिष्ठ पूज्यपाद श्री १०८ श्री स्वामी  
स्वतन्त्रानन्द गिरि जी महाराज, शिवालय-ऋषिकेश का

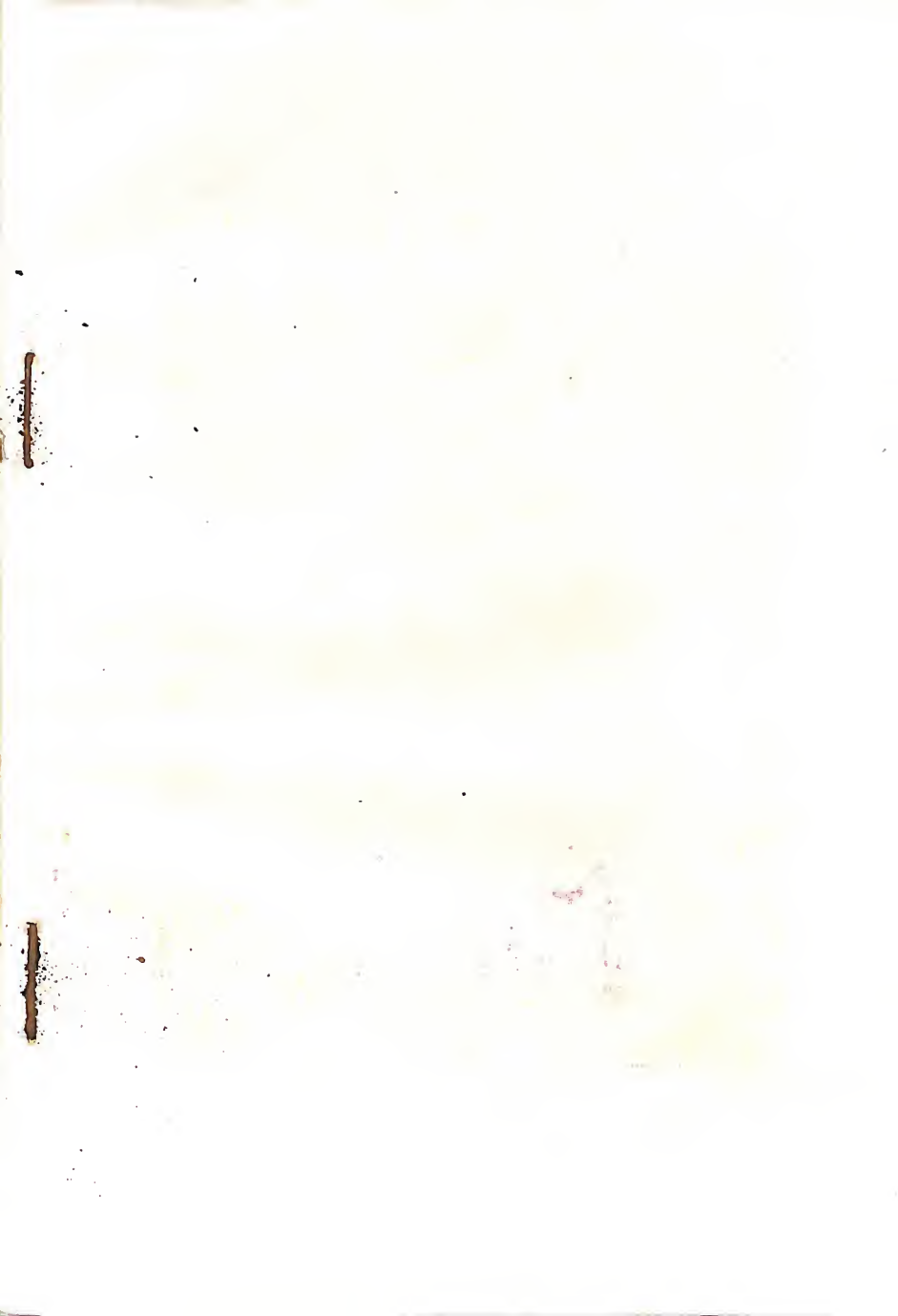
## शुभ सन्देश

‘सतां सङ्गो हि भेषजम् ।’

सत्-चित्-आनन्द स्वरूप अखण्ड अद्वितीय परब्रह्म सर्व जगत् का अधिष्ठान है। जीवात्मा के वास्तविक स्वरूप कूटस्थ प्रत्यगात्मा का भी उस परब्रह्म से तात्त्विक भेद नहीं है; किन्तु अज्ञान से, भ्रम से कल्पित है। जीव से वस्तुतः अभिन्न परब्रह्म का साक्षात्कार ही दुःख की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्तिरूप मोक्ष का एकमात्र साधन है। वह साक्षात्कार रूप ज्ञान वैराग्यादि साधनों से ही हो सकता है। वैराग्यादि साधन भी भगवद्भक्ति, चित्त-शुद्धि, निष्काम कर्म के अधीन हैं।

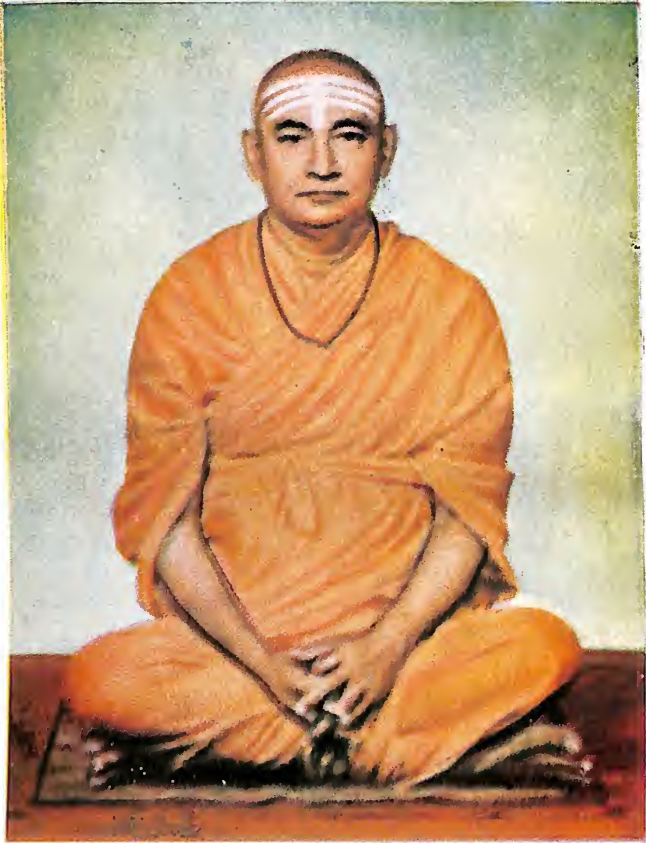
इन पूर्वोक्त सब साधनों में प्रबल प्रतिबन्ध है—  
मोह ! उस मोह का नाश होता है सत्सङ्ग से। अतः  
सत्सङ्ग मोह-निवृत्ति द्वारा साधनों की सम्पत्ति का सम्पादक होने से सबका मूल कहा गया है। यही संसार-रोग की निवृत्ति की औषध और संसारार्णवतरने के लिये दृढ़ नौका है—‘क्षणमिह सज्जन सङ्गतिरेका भवति भवार्णव-तरणे नौका ।’





ॐ

श्रीगुरुवे नमः



श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ परमहंस परिव्राजकाचार्य महामण्डलेश्वर १०८  
श्रोमत्स्वामी स्वतन्त्रानन्द गिरि जो महाराज



## \* गुरु जी की आरती \*



ध्यान-मूलं गुरोर्मूर्तिः पूजा-मूलं गुरोः पदम् ।  
मन्त्र मूलं गुरोर्वक्त्यं मोक्ष-मूलं गुरोः कृपा ॥  
शान्ति मन सुख शान्ति हृदय शान्ति मनोहर गात ।  
शान्ति गुरु के वाक्य में, चरण शिष्य का साथ ॥

जय गुरु देव दयानिधि दीनन हितकारी ।

जय, जय, मोह विनाशक भव बन्धनहारी ॥

जय देव गुरु देव ॥१॥

ब्रह्मा विष्णु सदाशिव गुरु मूर्तिधारी ।

वेद पुराण बखानत गुरु महिमा भारी ॥

जय देव गुरु देव ॥२॥

जप तप तीरथ संयम दान विवध दीने ।

गुरु विन ज्ञान न होवे कोटि जतन कीने ॥

जय देव गुरु देव ॥३॥



माया मोह नदी जल जीव बहें सारे ।  
नाम जहाज बिठाकर गुरु पल में तारे ॥

जय देव गुरु देव ॥४॥

काम क्रोध मद मत्सर चोर बड़े भारे ।  
ज्ञान खड्ग दे करमें गुरु सब संहारे ॥

जय देव गुरु देव ॥५॥

नाना पंथ जगत में निज निज गुण गावें ।  
सबका सार बताकर गुरु मारग लावें ॥

जय देव गुरु देव ॥६॥

गुरु चरणामृत निर्मल सब पातकहारी ।  
वचन सुनत तम नाशे सब संशयटारी ॥

जय देव गुरु देव ॥७॥

तन मन धन सब अर्पण गुरु चरणन कीजै ।  
ब्रह्मानन्द परम पद मोक्ष गती लीजै ॥

जय देव गुरु देव ॥८॥



# अथान्वितार्थसहितं महिम्नस्तोत्रं प्रारभ्यते

❀ अन्वितार्थकर्तुर्मङ्गलाचरणम् ❀

विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय

लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय ।

नागाननाय श्रुतियज्ञविभूषिताय

गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते ॥१॥

या कुन्देन्दु तुषार हार धवला या शुभ्रवस्त्रावृता,

या वीणावरदण्ड मण्डितकरा या श्वेतपद्मासना ।

या ब्रह्माच्युत शङ्कर प्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता,

सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ॥२॥

उदयगिरिमुपेतं भास्करं पद्महस्तं

निखिल भुवन नेत्रं रक्तरत्नोपमेयम् ।

तिमिरकरिमृगेन्द्रं बोधकं पद्मिनीनां

सुरवरमभिवन्दे सुन्दरं विश्ववन्द्यम् ॥३॥

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं,

विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं सुभाङ्गम् ।

लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यातगम्यम्,

वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ॥

देवि प्रपन्नान्ति हरे प्रसीद

प्रसीद मातर्जगतीऽखिलस्य ।

प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं

त्वमोश्वरी देवि चराचरस्य ॥४

एक प्राचीन आख्यायिका है कि कोई गन्धर्वराज किसी राजा के उपवन से प्रतिदिन पुष्प-हरण किया करता था। उसको जानने के लिए—‘शिवनिर्मल्य का उल्लङ्घन करने से मेरे पुष्पचौर की अन्तर्धानादि सर्व शक्तियाँ नष्ट हो जायँगी’—इस अभिप्राय से राजा ने मार्ग में शिवनिर्मल्य बिछा दिया। इस को न जानकर गन्धर्वराज उस मार्ग से प्रवेश करते ही अन्तर्धानादि सर्व दिव्य शक्तियों से हीन हो गया। तब गन्धर्वराज ने ध्यान से देखा कि शिवनिर्मल्य के उल्लङ्घन से ही मेरी अन्तर्धानादि शक्तियाँ नष्ट हो गई हैं। अतः उस अपराध के क्षमापन के लिए गन्धर्वराज ने परमकरुणामय सर्वकामप्रद शङ्कर भगवान् की स्तुति की थी। वही स्तुति ‘महिम्न-स्तोत्र’ नाम से प्रसिद्ध है जिसका अन्वितार्थ नाम भाषानुवाद सर्वसाधारण की सुगमता के लिए अन्वय-सहित आगे किया जाता है—





गजाननं

भूतगणादिसेवितं

कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम् ।

उमासुतं

शोक विनाशकारकं

नमामि विघ्नेश्वर पादपङ्कजम् ॥

(१ श्लो) अवतरणिका—‘भगवान के गुण अनन्त हैं, अतः उनको पूर्णतया जानना अशक्य है। इस कारण से गुणकथनात्मक स्तुति कैसे योग्य हो सकती’ इस आशंका के निराकरण के मिष से अपने अनौद्धत्य को प्रकट करते हुए गन्धर्वराज पुष्प-दन्ताचार्य भगवान शंकर की स्तुति का प्रारम्भ करते हैं—

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी

स्तुतिर्ब्रह्मादिनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः ।

अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्

ममाप्येष स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः ॥१॥

अन्वितार्थ—(हे हर) समस्त दुःखों को हरण करने वाले हे भगवन् महादेव ! (ते महिम्नः) आप की महिमा की (परं

पारम्) अन्तिम सीमा को (अविदुषः) न जानने वाले के द्वारा की हुई (स्तुतिः) स्तुति (यदि असदृशी) यदि अयोग्य हो (तत्) तब तो (ब्रह्मादीनाम् अपि) ब्रह्मादि देवताओं के द्वारा भी (गिरः) की हुई आपकी स्तुति (त्वयि अवसन्नाः) आपके अयोग्य ही हो सकती है, क्योंकि आपकी अनन्त महिमा का पूर्ण ज्ञान उनको भी असम्भव है। (अथ) और यदि ऐसा कहें कि (स्वमति परिणामावधिगुणन्) स्व स्व बुद्धिबल अनुसार स्तुति करने वाला (सर्वः) सब कोई भी (अवाच्यः) उपालम्भ के अयोग्य है [तर्हि] तब तो (स्तोत्रे) इस स्तुति के आरम्भ का (मम अपि) मेरा भी (एषः परिकरः) यह उद्योग (निरपवादः) निर्बाध ही है ॥

भाव यह है कि भगवान् शङ्कर की महिमा अपार होने से विशेषतया दुर्विज्ञेय होने पर भी स्व स्व बुद्धि के अनुरूप भगवान् के गुण कीर्तन का सर्व को अधिकार है। अतः पूर्वोक्त शंका का अवकाश नहीं ॥१॥

(२) अवाङ्मनसगोचर होने पर भी भगवान् की महिमा की स्तुति का प्रकारान्तर से उपपादन करते हुए अग्रिम श्लोक से भगवान् की स्तुति करते हैं—

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो-

रतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि ।

स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः

पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः ॥२॥

अन्वितार्थ—[हे हर] स्मरणमात्र से पापनाशक हे महादेव ।

(तव महिमा) “एष नित्यो महिमा” इस श्रुति के अनुसार सगुण निर्गुण ब्रह्मस्वरूप उभयात्मक आपकी महिमा (वाङ्मनसयोः पन्थानम् अतीतः च) [एव] ‘यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह’ इस श्रुति के अनुसार मन वाणी का अविषय ही है। (यम्) जिस सगुण निर्गुण महिमा का (श्रुतिः अपि अतद्व्यावृत्त्या) ‘सर्वं खल्विदं ब्रह्म’ ‘सर्वकर्मा’ इत्यादि श्रुति भी सर्वाभेदन तथा ‘तत्त्वमसि’ आदि महावाक्यात्मक श्रुति भी लक्षणामुखेन उपाधिनिषेध द्वारा (चकितम् अभिधत्ते) चकित सी होकर अर्थात् भयभीत होकर कथन करती हैं। अभिप्राय यह है कि सगुण पक्ष में कुछ अयुक्त कथन न हो जाय और निर्गुण पक्ष में स्वप्रकाश की अन्याधीन प्रकाशता न हो जाय इस भय से भीत होकर कथन करती हैं। (सः) उस सगुण निर्गुण ब्रह्मस्वरूप महिमा की (कस्य स्तोतव्यः) स्तुति कौन कर सकता है, अर्थात् वह अवाङ्मनसगोचर होने से स्तुति से परे हैं। सगुण निर्गुण स्वरूप की स्तुति इस कारण से नहीं हो सकती कि (कतिविधगुणः) सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि आदि के कर्ता सगुण निराकार मायावच्छिन्न स्वरूप अनन्त गुणवाला है, अतः किसी के मन तथा वाणी के विषय न होने से स्तुति का विषय नहीं हो सकता। (कस्य विषयः) और आपका निर्गुण स्वरूप सम्पूर्ण गुण तथा धर्मादि से रहित होने के कारण मनवाणी का विषय ही नहीं, इसी से स्तुति के योग्य नहीं हो सकता। (अर्वाचीने पदे तु) अतः आप के भक्तानुग्राहक सगुण साकार पंचमुख त्रिनेत्र आदि युक्त मायिक लीला



विग्रह स्वरूप में तो (कस्य मनः न [पतति] वचः न पतति) किस के मन तथा वाणी की प्रवृत्ति नहीं हो सकती। अर्थात् वही सब के द्वारा स्तुति करने को शक्य हो सकता ॥२॥

(३) भगवान के मनोरंजनात्मक स्तुतिफल सम्भव न होने पर भी प्रकारान्तर से स्तुति का साफल्य प्रतिपादन करते हुए भगवान की स्तुति करते हैं।

मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मितवत-

स्तव ब्रह्मन् किं वागपि सुरगुरो विस्मयपदम् ।

मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः

पुनार्मात्यर्थेऽस्मिन् पुरमथन बुद्धिर्व्यवसिता ॥३॥

अन्वितार्थ—(हे ब्रह्मन्) हे विभो ! (मधुस्फीता) मधु के समान मधुर (परमम् अमृतम्) परम अमृत रूप (वाचः) वेद वाणी के (निर्मितवतः तव) निर्माण करने वाले आप को (सुर-गुरोः अपि वाक्) बृहस्पति की भी वाणी (विस्मयपदं किम्) विस्मित कर सकती क्या, अर्थात् वह भी आश्चर्य उत्पादन कर आप का मनोरंजन नहीं कर सकती, तो हमारे जैसों की तो कथा ही क्या। (तु) तथापि (हे पुरमथन) हे त्रिपुरान्तक ! (भवतः गुणकथन पुण्येन) आप के गुण कथन जन्य पुण्य के द्वारा (मम एतां वाणीम्) मेरी इस वाणी को (पुनार्मा) पवित्र करूँ (इति अस्मिन् अर्थे) इस अभिप्राय से आप के इस गुण कथन रूप अर्थ में (बुद्धिः व्यवसिता) मेरी बुद्धि उद्यत हुई है ॥३॥

(४) ईश्वर के अस्तित्व को नहीं स्वीकार करने वाले नास्तिकों के मत का निराकरण करते हुए भगवान की स्तुति “तवैश्वर्यम्” इस श्लोक से करते हैं—

तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्

त्रयीवस्तु व्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु ।

अभव्यानामस्मिन् वरद रमणीयामरमणीं

विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः ॥४॥

अन्वितार्थ—(हे वरद) हे अभीष्टफलप्रद परमेश्वर ! (जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्) जगत की उत्पत्ति स्थिति लय करने वाला (त्रयी वस्तु) तथा समस्त वेदों के तात्पर्यतः प्रतिपाद्यविषय और (गुणभिन्नासु तिसृषु तनुषु व्यस्तम्) सत्त्व रजः तमः इन गुणों से भिन्नाकार बिष्णु, ब्रह्मा, महेश्वर नामों से प्रसिद्ध तीन स्वरूपों में विभक्त तथा व्यक्त अर्थात् आविर्भूत (यत् तव ऐश्वर्यम्) [अस्ति] जो आपका ऐश्वर्य अर्थात् ईश्वरभाव है (तद् विहन्तुम्) उसका खण्डन करने के लिये (इह) इस लोक में (एके जडधियः) कतिपय मन्द बुद्धि वाले नास्तिक जन अस्मिन् अभव्यानां रमणीयाम्) इस त्रैलोक्य में भी जिनका कहीं कल्याण नहीं है ऐसे पापियों को प्रिय लगने वाली [वस्तुतः] (अरमणीम्) परन्तु वास्तव में अमनोहर (व्याक्रोशीम्) व्यर्थ की वितण्डा (विदधते) किया करते हैं।

तात्पर्य यह है कि प्रत्यक्ष अनुमान तथा आगम तीनों प्रमाणों से सिद्ध आपके ईश्वरत्व को नास्तिक लोग वितण्डावाद

आश्रय करके खण्डन करने के लिए व्यर्थ ही आक्षेप किया करते हैं, परन्तु उनके आक्षेपमात्र से आप का ईश्वरस्वरूप निराकृत नहीं हो सकता ॥४॥

(५) पूर्वोक्त व्याकोशी को ही अब अग्रिम श्लोक में स्पष्ट करते हुए भगवान की स्तुति करते हैं—

किमीहः किंकायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं  
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च ।

अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः

कुतर्कोऽयं कांश्चिन् मुखरयति मोहाय जगतः ॥५॥

अन्वितार्थ—हे वरद ! ईश्वर के खण्डन के लिए नास्तिक लोग इस प्रकार के कुतर्क करते हैं कि (सः खलु धाता) वह विधाता परमेश्वर (त्रिभुवनं सृजति) यदि त्रैलोक्य की सृष्टि करता है तो (किमीहः) किस व्यापार के द्वारा सृष्टि करता है, (किंकायः) उसका शरीर ही क्या है, (किमुपायः) तथा उस के पास सहकारी कारणसामग्री क्या है, (किमाधारः) और उस का अधिकरण अर्थात् आश्रय क्या है, (किमुपादानः) तथा समवायी कारण क्या है, अर्थात् ये सब ईश्वरवाद में अनुपपन्न है । (इति अयं कुतर्कः) इस प्रकार का यह कुतर्क (अतर्क्यैश्वर्ये त्वयि) अचिन्त्य ऐश्वर्य वाले आप में (अनवसरदुःस्थः) निरवकाश होने से अयुक्त है, तथापि वह कुतर्क (कान् चित् हतधियः) कतिपय भ्रष्ट बुद्धि वाले नास्तिकों को (जगतः मोहाय) जगत के



व्यामोह अर्थात् विपरीत भावना उत्पन्न करने के लिए (मुखर-यति) मुखर बना देता है ।

यहां नास्तिककृत आक्षेप का यह अभिप्राय है—शरीरधारी ही चेष्टा कर सकता है, शरीर के बिना चेष्टा नहीं बनती, क्योंकि चेष्टा शरीर का ही धर्म है । अतः शरीर रहित होने के कारण चेष्टाहीन होने से ऐसे ईश्वर को जगत्कर्ता मानने में कोई युक्ति नहीं । शरीर भी उस परमेश्वर का नहीं बन सकता क्योंकि अपना शरीर आप ही कोई अशरीरी बना नहीं सकता संसार में अपना शरीर बनाने वाला आप ही कोई होता है ऐसा नहीं देखने में आया । किंच शरीर सृष्टि के अन्तर्गत है, और सृष्टिकर्ता को जगत् सृष्टि के लिए सृष्टि से पहले शरीर वाला मानना अयुक्त होगा । अतः ईश्वर के शरीर न होने से जगत्स्रष्टा वह बन नहीं सकता ।

इसी प्रकार सृष्टि के पूर्व ईश्वरातिरिक्त कुछ भी जब नहीं था तो सहकारी कारण अर्थात् सृष्टि की उपकरण सामग्री, सृष्टिकर्ता का आश्रय तथा उपादानकारणादि कुछ भी होना सम्भव नहीं । तो फिर जगत्कर्तृत्वेन ईश्वर की सिद्धि कैसे हो सकती है !

परमाणु आदि उपादान कारण के मानने पर भी वनस्थ वृक्ष की न्याँई स्वभाव से ही कर्ता के बिना यह जगत् परमाणु आदि से उत्पन्न हो सकता है । ईश्वर रूप कर्ता मानने की कोई आवश्यकता नहीं । क्योंकि पूर्वोक्त हेतु से शरीरादि के बिना जगत्स्रष्टृत्व अनुपपन्न है । जहां सृष्टिकर्तृत्व है वहां शरीरादि

भी होना चाहिये यह नियम घटादि के कर्ता कुम्भकारादि में देखा गया है। और परमाणु आदि नित्य पदार्थों का बनाने वाला कोई कर्ता हो भी नहीं सकता, इस कारण से 'सर्व जगत का कर्ता ईश्वर है' ऐसा कहा भी नहीं जा सकता।

परन्तु यहां गन्धर्वराज का अभिप्राय यह है कि—अचिन्त्य सायाशक्तिवाले परमेश्वर के लिये आवश्यक सामग्री सम्पादन करने में कोई बाधा न होने से नास्तिकों के इस प्रकार कुतर्क का कोई अवकाश नहीं है ॥५॥

(६) अब नास्तिकवाद का युक्तिपूर्वक खण्डन करते हुए भगवान की स्तुति करते हैं—

अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोऽपि जगता-  
मधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति ।

अनीशो वा कुर्याद् भुवनजनने कः परिक्ररो

यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरत इमे ॥६॥

अन्वितार्थ—अनीश्वरवादी के मत में भूरादि लोक अजन्मा ही मानना पड़ेगा, क्योंकि उन के मत में सृष्टिकर्ता परमेश्वर कोई है नहीं, परन्तु यह 'प्रसम्भव' है, क्योंकि (अवयववन्तः अपि) सावयव होते हुए भी (लोकाः) भूरादि लोक (अजन्मानः किम्) जन्मरहित अर्थात् उत्पत्ति रहित हो सकते हैं क्या। भाव यह है कि अवयव वाले होने से पृथिवी आदि लोकों को जन्म-रहित नहीं मान सकते। जो सावयव होता है वह उत्पत्तिवाला

भी होता ही है ऐसा साहचर्य नियम घटादि स्थल में निश्चित है ।  
अतः सावयव जगत के जन्म आदि अवश्य स्वीकार्य है ।

भूरादि-लोक जन्य है ऐसा मान भी लिया जाय तथापि ईश्वर को क्यों मानना चाहिये ऐसी आशंका का उत्तर कहते हैं—  
(जगतां भवविधिः) जगतरूप कार्य की सृष्टि (अधिष्ठातारम् अनादृत्य) कर्ता को न मानकर (भवति किम्) हो सकती है क्या अर्थात् नहीं हो सकती । अतः ईश्वररूप जगत्कर्ता के बिना सृष्टि मानना अयुक्त है ।

कर्ता के बिना जगज्जन्मादि यदि अनुपपन्न है तो जीव को जगत का कर्ता मान लेंगे इस आशंका का समाधान करते हैं कि जीव को जगत का कर्ता मानना सम्भव नहीं क्यों कि (अनीशः वा कुर्यात्) ईश्वर से भिन्न अनिश्वर अल्पज्ञ जीव यदि संसार की रचना करता होवे तो (भुवनजनने कः परिकरः) चतुर्दशभुवन की रचना में अर्थात् रचना करने के लिये उसके पास क्या सामग्री है जिससे वह जगत की रचना करेगा । अल्पज्ञ होने के कारण वह जीव अपने शरीर की रचना को भी जब नहीं जानता तो चतुर्दश भुवन की रचना कैसे कर सकता । अतः ईश्वर ही जगत की सृष्टि करते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं, तथापि (यतः इमे मन्दाः) [अतः] जिस कारण से ये नास्तिक लोग वस्तुतः मूढ़ अर्थात् अविवेकी हैं उसी लिए (हे अमरवर) हे सर्वदेव-श्रेष्ठ भगवन् ! (त्वां प्रति संशेरते) आप के प्रति संशय करते हैं । अतः वास्तव में वे विद्वान विवेकी नहीं ।



भाव यह है कि सर्वप्रमाणसिद्ध ईश्वर के प्रति ऐसे अविवेकी मूर्खों के आक्षेप पर ध्यान नहीं देना चाहिये और न ही मन में ईश्वर के विषय में संशय करना चाहिये ॥६॥

(७) पूर्वोक्त युक्ति से नास्तिकवाद का निराकरण करके अब सम्पूर्ण शास्त्र प्रस्थानों का साक्षात् अथवा परम्परा से भगवान् में ही तात्पर्य है इस का प्रतिपादन करते हुए भगवान् की स्तुति करते हैं—

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति

प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।

रुचीनां वैचित्र्याद्भुजुकुटिलनानापथजुपां

नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥७॥

अन्वितार्थ—हे अमरवर ! (त्रयी) [वेदत्रय के वाचक त्रयीशब्द से उपलक्षित] सम्पूर्ण वेद वेदाङ्ग तथा वेदोद्भूत समग्र विद्याएँ प्रथम प्रस्थान अर्थात् श्रेयोमार्ग-प्रदर्शक विद्यास्थान है । धर्म तथा ज्ञान के द्वारा परमनिःश्रेयस की प्राप्ति इसका प्रयोजन है । (सांख्यम्) भगवान् कपिल के द्वारा प्रणीत 'त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्त पुरुषार्थः' इत्यादि षडध्यायात्मक सांख्य शास्त्र द्वितीय प्रस्थान है । प्रकृतिपुरुषविवेकज्ञान सांख्य शास्त्र का प्रयोजन है । (योगः) भगवान् पतंजलि प्रणीत 'अथ योगानुशासनम्' इत्यादि पादचतुष्टयात्मक योगशास्त्र तृतीय प्रस्थान है । विजातीय प्रत्ययनिरोध द्वारा निदिध्यासन की सिद्धि योगशास्त्र का प्रयोजन है । (पशुपतिमतम्) पशुपाशविमोक्षणार्थ—जीवों की बन्धन से



मुक्ति के लिये भगवान पशुपति के द्वारा विरचित 'अथातः पाशुपतयोगविधिं व्याख्यास्यामः' इत्यादि पंचाध्यायात्मक पाशुपत शास्त्र चतुर्थ प्रस्थान है। दुःखनिवृत्तिनामक मोक्ष इसका प्रयोजन है। (वैष्णवम्) नारदादिमुनि प्रणीत पंचरात्र आदि शास्त्र पंचम प्रस्थान है। मन वाणी और शरीर के द्वारा भगवान वासुदेव के आराधन करके कृतकृत्यता का लाभ ही इस शास्त्र का प्रयोजन माना गया है। [संक्षेप में प्रस्थान तीन प्रकार का है—(१) आरम्भवाद (२) परिणामवाद (३) और विवर्त्तवाद]। (इति प्रभिन्ने प्रस्थाने) इस प्रकार विभिन्न प्रस्थानों में (इदं परं पथ्यम्, अदः) [परं पथ्यम्] अमुक प्रस्थान अत्यन्त हितकर है, अथवा वह दूसरा प्रस्थान मेरे लिए अति हितकर है (इति च रुचीनां वैचित्र्यात्) इस प्रकार की विलक्षण इच्छाओं से (ऋजुकुटिल-नानापथजुषां नृणाम्) साक्षात् अथवा परम्परया मोक्ष के प्रापक नाना साधनों का सेवन करने वाले मनुष्यों को अर्थात् मनुष्यों के लिये (पयसाम् अर्णव इव) गङ्गा यमुना आदि नदियों का साक्षात् परम्परया वा प्राप्य एक मात्र समुद्र की न्याईं (त्वम् एकः गम्यः असि) आप ही एक मात्र प्राप्तव्य परमगति हैं ॥

तात्पर्य यह है कि वेदान्तवाक्यश्रवणमननादिनिष्ठ मुमुक्षुओं के लिए नित्यमुक्तस्वरूप आप साक्षात् ही प्राप्य हैं और इतर कर्मोपासनादिनिष्ठ साधकों को अन्तःकरणशुद्धितारतम्य से परम्परया आप प्राप्य हैं। वेदादि अनेक शास्त्रप्रदर्शित नाना-साधनानुष्ठानद्वारा साक्षात् अथवा परम्परया आपकी प्राप्ति ही मुक्ति है ॥७॥

(८) पूर्वोक्त प्रकार से सर्वशंकाओं का निराकरण करके अब अर्वाचीनपदस्थ अर्थात् साकार भगवत्स्वरूप की स्तुति करते हैं—

महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्म फणिनः

कपालं चेतीयत्तव वरद तन्त्रोपकरणम् ।

सुरास्तां तामृद्धिं दधति तु भवद्भ्रूप्रणिहितां

न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति ॥८॥

अन्वितार्थ—हे वरद ! (तव) सर्वेश्वर होनेपर भी आपके पास दैहिक निर्वाहसाधन सांमग्री इतनी मात्र ही है कि—(महोक्षः) बूढ़ा बैल (खट्वाङ्गम्) खट्वाङ्ग नामक शस्त्रविशेष अथवा खाट का अवयव आशादण्ड (परशुः) कुठार (अजिनम्) मृगचर्म (भस्म) विभूति (फणिनः) सर्प (कपालं च) और मनुष्य की खोपड़ी (इति इयत्) इतना ही अर्थात् ये सात पदार्थ मात्र ही (तन्त्रोपकरणम्) [अस्ति] शरीरयात्रा निर्वाहक तथा कुटुम्ब-पोषण का साधन है। इस प्रकार आप एक द्रविद्र के समान तुच्छसामग्रीयुक्त रहते हैं, और (सुराः) देवता लोग तो (भवद्भ्रूप्रणिहिताम्) सेवा से प्रसन्न आशुतोष आपकी भ्रूभङ्ग-मात्र से दिये हुए (तां तामृद्धिं दधति) अनेकानेक दिव्य ऐश्वर्यों को भोगते हैं। (हि) सो इसका कारण यही है कि (विषयमृगतृष्णा) मिथ्या विषयों में सुखत्वभ्रान्ति (स्वात्मारामम्) अपने स्वरूप आत्मा में रमण करने वाले ज्ञानी को (न भ्रमयति) मोहित नहीं कर सकती।

भाव यह है कि स्वात्मारामता को प्राप्त हुआ जीव भी जब विषयों में आसक्त नहीं होता तो नित्यमुक्त परमेश्वर विषयाकृष्ट नहीं होंगे इसमें कहना ही क्या है । ऐसे वृषभारूढ़ तथा खट्वाङ्ग परशु फणी कपाल से भूषित चतुर्भुज चर्मवसनधारी भस्मलित अनेक भूषणालङ्कृत भगवान् महेश्वर का स्वरूप गुरूपदेश से जानकर स्तुति आदि द्वारा उपासितव्य है ॥८॥

(६) भगवान् की स्तुति किस प्रकार की जाय इसका निरूपण करते हुए भगवान् की स्तुति करते हैं—

ध्रुवं कश्चित् सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदं  
परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदतिव्यस्तविषये ।

समस्तेऽप्येतस्मिन् पुरमथन तैर्विस्मित इव

स्तुवञ्जिह्व मि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता ॥९॥

अन्वितार्थ—(हे पुरमथन ! ) हे त्रिपुरान्तक ! (कश्चित्) कोई एक सांख्य पातंजल मतानुसारी सत्कार्यवादी (सर्व ध्रुवं गदति) समग्र जगत् को उत्पत्ति-विनाशरहित सत् ही कहता है । उसके मत में असत् की उत्पत्ति नहीं हो सकती, और सत् वस्तु का विनाश भी नहीं हो सकता । इस मत में सत् का आविर्भाव तिरोभाव ही उसका जन्मनाश है । अतः सर्वज्ञ परमेश्वर सत् जगत् का आविर्भाव तिरोभाव ही कर सकते हैं उत्पत्ति विनाश नहीं । (अपरःतु) और दूसरा बौद्धमतानुसारी क्षणिकविज्ञानवादी (इदं सकलम् अध्रुवम् [गदति] यह सम्पूर्ण जगत् क्षणिक



अर्थात् प्रतिक्षण विनाशी है ऐसा कहता है। उसके मत में सत् वस्तु की स्थिरता नहीं हो सकती क्योंकि जो जो सत् वह सब क्षणिक ही है, स्थिर नहीं। इस मत में ईश्वर भी क्षणिकविज्ञान रूप होने से असत् की उत्पत्ति कर सकते हैं पर सत् की स्थिरता सम्पादन कर नहीं सकते। (परः) और उन दोनों से विलक्षण तार्किक अर्थात् नैयायिक वैशेषिक आदि मतानुसारी (समस्ते अपि एतस्मिन् जगति) सम्पूर्ण भी इस जगत में (ध्रौव्याध्रौव्ये) नित्यत्व और अनित्यत्व (व्यस्तविषये) भिन्न धर्मीयों में रहने वाले धर्म हैं इस प्रकार कहते हैं। उनके मत में आकाश काल परमाणु आदि कतिपय पदार्थ नित्य और कार्यरूप पृथिवी आदि अनित्य है। उसमें भी अनित्यों की उत्पत्ति तथा नाश ईश्वर कर सकते हैं, नित्यों की नहीं। इस प्रकार इन तीनों पक्षों में द्वैत का अङ्गीकार होने से अद्वितीय सन्मात्ररूप परमेश्वर का सम्बन्ध भी नहीं है, इसलिये उनके मतानुसार स्तुति करने पर सोपाधिक संकुचित ऐश्वर्ययुक्त स्वरूप की स्तुति होगी, सो अत्यन्त लज्जाकर है, इस कारण से किस प्रकार स्तुति आपकी की जाय। तथापि (विस्मित इव) एक विस्मित अर्थात् आश्चर्य चकित पुरुष की न्याईं (तैः त्वां स्तुवन्) उन्हीं प्रकारों से आपकी स्तुति करता हुआ (न जिह्मे मि) मैं लज्जित नहीं हो रहा हूँ (खलु मुखरता ननु धृष्टा) क्योंकि निश्चय ही वाचालता बड़ी ढीठ होती है जो कि लज्जा का अपहरण करती है ॥६॥

अथवा इस श्लोक का दूसरा अर्थ इस प्रकार जानना कि—



(कश्चित्) दार्शनिकों में कुछ लोग (सर्वं ध्रुवं गदति) इस समग्र जगत को ध्रुव अर्थात् नित्य कहते हैं अर्थात् मानते हैं (अपरः तु) और कुछ लोग तो (इदं सकलम् अंध्रुवं) [गदति] इस सम्पूर्ण जगत को अनित्य मानते हैं (परः) इनसे भिन्न कुछ लोग (समस्ते अपि एतस्मिन् जगति) इस निखिल जगत में (ध्रौव्याध्रौव्ये) आकाशादि कुछ पदार्थों को नित्य तथा कार्यरूप पृथिवी आदि कुछ पदार्थों को अनित्य मानते हैं (व्यस्त-विषये तैः) इस प्रकार भिन्न भिन्न इन सब पक्षों में वादियों के द्वारा (विस्मित इव अहम्) विस्मित सा हुआ मैं अर्थात् पूर्वोक्त मतमतान्तरों के विषय में बुद्धिमान् विद्वान् वादियों ने परमेश्वर का वास्तव सच्चिदानन्दधन सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् सर्वेश्वर नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप का यथावत् प्रतिपादन न करने करके मुझे चकित सा कर दिया कि अर्वाचीनपद की स्तुति करता हुआ मैं भी कदाचित् उपहास्यास्पद शायद बन जाऊँ इसलिये सर्ववेदप्रतिपाद्य आपके पूर्वोक्त अर्वाचीन स्वरूप की स्तुति करने में मुझे लज्जित होना चाहिये था परन्तु (हे पुरमथन) हे त्रिपुरान्तक शंकर भगवान् (त्वां स्तुवन् न जिह्मे मि खलु) जैसे कोई आश्चर्यचकित पुरुष लोकोपहास की उपेक्षा करके चेष्टा करता है उसी तरह मैं भी वादियों के उपहास की गणना न करता हुआ आपकी स्तुति के लिये प्रवृत्त होने में लज्जा नहीं मान रहा हूँ क्योंकि (मुखरता) शास्त्र प्रतिपाद्य सत्यवादिता (ननु घृष्टा) उन सब शास्त्र विरुद्ध अतएव असत् मतान्तरों का धर्षण करने वाली

अर्थात् धर्षण करने में समर्थ है इसी कारण से आपके अर्वाचीन स्वरूप की स्तुति करने में मैं लज्जित नहीं होता हूँ क्योंकि शास्त्र प्रमाण से बोलने वाले को किसी से भी धर्षित होने का भय नहीं होता ॥६॥

(१०) अब हरि ब्रह्मा जैसे प्रकृष्टप्रभावशाली देवों को भी भगवान् शंकर के प्रसाद से ही उनका साक्षात्कार हो सकता है इसका निरूपण करते हुए स्तुति करते हैं—

तवैश्वर्यं यत्नाद् यदुपरि विरंचिर्हरिः

परिच्छेत्तुं यातावनलमनलस्कन्धवपुषः ।

ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश यत्

स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति ॥१०॥

अन्वितार्थ—(हे गिरिश) हे कैलाश निवासिन् (यत् अनल-स्कन्धवपुषः) जिस कारण से तेजःपुञ्ज मूर्ति (तव ऐश्वर्यम्) आपके ऐश्वर्य ज्योतिर्मय लिङ्गात्मक स्थूल मूर्ति को (परिच्छेत्तुम्) यह कितना है इस प्रकार परिमाण के निश्चय करने के लिये (विरंचिः उपरि) ब्रह्मा जी ऊपर को (हरिः अधः) तथा विष्णु नीचे को (यत्नात् यातौ) सर्व प्रयत्न के साथ जहाँ तक जा सकते हैं गये (अनलम्) किन्तु उस स्थूल रूप के भी परिमाण अर्थात् सीमा जानने को समर्थ नहीं हुए । (ततः) तब सफलता न प्राप्त होने पर (भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां ताभ्याम्) अतिशय भक्ति श्रद्धा के साथ आपकी तेजोमयी परमोत्कृष्ट मूर्ति की निरतिशय स्तुति करते हुए उन दोनों के साक्षात् दर्शन करवाने के अर्थ

[तव ऐश्वर्य] (स्वयं तस्थे) आपके गुह्य ऐश्वर्य ने जो स्वयं ही अपने आपको प्रगट किया वह आपकी स्तुतिरूप सेवा का ही फल है (तव अनुवृत्तिः किं न फलति) आपकी वह सेवा क्या क्या फल नहीं देती किन्तु आपके साक्षात्कार पर्यंत फल को भी दे सकती है ।

यद्वा (भक्तिश्रद्धाभरगुरुगुणद्भ्यां ताभ्यां स्वयं तस्थे) अथवा वे दोनों जब आपकी स्तुति करने के पश्चात् स्तुतिरूप सेवा से निवृत्त हो भी गये तथापि (तव अनुवृत्तिः न फलति किम्) आपकी सेवा अवश्य फल देने वाली होती है-निष्फल नहीं जा सकती इसलिये उनको आपका साक्षात्कार प्राप्त हुआ ॥१८॥

(११) अब रावण के दृष्टान्त से भगवान् शंकर की भक्ति का आलौकिक माहात्म्य को प्रगट करते हुए स्तुति करते हैं—

अयत्नादापाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरं

दशास्यो यद्बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान् ।

शिरःपद्मश्रेणीरचित चरणाम्भोरुहवलेः

स्थिरायास्त्वद्भक्ते स्त्रिपुरहर विस्फूर्जितमिदम्॥११

अन्वितार्थ—(हे त्रिपुरहर) हे त्रिपुरान्तक (दशास्यः) दशमुख रावण (अयत्नात्) अनायास ही (त्रिभुवनम्) त्रैलोक्य को (अवैरव्यतिकरम् आपाद्य) शत्रुरहित निष्कण्टक एकच्छत्र राज्य बनाकर (यत् रणकण्डूपरवशान्) जो युद्ध के कण्डूयनयुक्त (बाहून् अभृतः) भुजाओं को धारण करता था अर्थात् त्रिभुवन में जिसने युद्ध द्वारा त्रिलोकी के इन्द्रादि समस्त वीरों को पराजित



करके दास ही बना लिया था तब भी ऐसे रावण की युद्धेच्छा निवृत्त नहीं हुई इसलिये उसकी भुजाओं में युद्ध की खुजली मच रही थी उसकी युद्धेच्छा को निवृत्त करने वाला कोई समकक्ष अथवा अधिक पराक्रम वाला भट नहीं रहा (इदम्) यह सब (स्थिरायाः त्वद्भक्तेः) आपके प्रति स्थिर भक्ति का ही (विस्फूर्जितम्) प्रभाव था (शिरःपद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः) जिस भक्ति के आवेश में रावण ने अपने शिरों का छेदन करके आपके चरणों में पुष्प के समान उपहार चढ़ा दिया था ॥११॥

(१२) स्थिरभक्ति के कारण रावण के उपर भगवान का अनुग्रहप्रदर्शन कर अब दर्प के कारण रावण के निग्रह का प्रदर्शन करते हुए भगवान की स्तुति करते हैं—

अमुष्य त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजवनं

बलात् कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः ॥

अलभ्या पातालेऽप्यलसचलिताङ्गुलिशिरसि

प्रतिष्ठा त्वय्यासीद् भ्रुवमुपचितोमुद्यति खलः ॥१२॥

अन्वितार्थ—हे त्रिपुरान्तक ! (त्वत्सेवासमधिगतसारम्) आपकी सेवा द्वारा ही प्राप्त आपकी कृपा से अतुलबलसम्पन्न (भुजवनम्) विंशति बाहु समूह को (त्वदधिवसतौ) आपकी निवासभूमि (कैलासे अपि) कैलास पर्वत में भी (बलात् विक्रमयतः) बलपूर्वक व्यापृत करते हुए अर्थात् 'कैलाश को उखाड़कर खंका में ले जाऊँगा इस अभिप्राय से' अपने बाहुओं



के द्वारा कैलास पर्वत को भी उखाड़ने की चेष्टा करते हुए (अमुष्य प्रतिष्ठा) उस रावण की स्थिति—(त्वयि अलसचलिताङ्गुष्ठ-शिरसि) [सति] भयभीत पार्वती की प्रार्थना से कैलास को नीचे धसाने के लिए आपके अङ्गुष्ठाग्रभाग के दबाने मात्र से—(पाताले अपि) पाताल में भी (अलभ्या आसीत्) अलभ्य—दुर्लभ हो गई थी अर्थात् पाताल से भी आगे वह जाने लगा था । भगवान की कृपा से लब्धवर रावण भगवान को कैसे भूल गया था इस शंका का समाधान करते हैं कि (उपचितः [सन्] खलः) समृद्धि सम्पन्न होकर कृतघ्न पुरुष (ध्रुवं मुह्यति) अवश्य ही उपकार को भूल जाता है, अपनी समृद्धि के हेतु का भी आदर नहीं करता ॥

इस श्लोक में एक पौराणिक इतिहास का संग्रह किया गया वह इस प्रकार है—

पुराणों में इतिहास प्रसिद्ध है कि भगवत्कृपा से ही बल-सम्पन्न हुआ रावण अपवे बल की परीक्षा के लिए भगवान की निवासभूमि कैलास को उखाड़ने लगा था तब भयभीत भगवती पार्वती की प्रार्थना से भगवान शंकर ने कैलास को नीचे दबाने के अभिप्राय से अपने अङ्गुष्ठ के अग्रभाग से दबाया था और उतने मात्र से ही रावण का बल क्षीण होकर वह पाताल में धस गया था पुनः करुणामय भगवान ने उसका उद्धार किया था ॥१२॥

(१३) पूर्व श्लोक में भगवान के प्रति भी अत्यन्त उद्धत

रावण की अत्यवनति प्रदर्शन किया। अब अग्रिम श्लोक में भगवान के चरण कमलों की नितान्तनम्रतापूर्वक सेवा करने वाले बाणासुर की चरम उन्नति को देखाते हुए भगवान की स्तुति करते हैं—

यद्वि सुत्राम्णो वरद परमोच्चैरपि सती-

मधश्चक्रे बाणः परिजनविधेयत्रिभुवनः ॥

न तच्चित्रं तस्मिन् वरिवसितरि त्वच्चरणयो-

न कस्याउन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः ॥१३॥

अन्वितार्थ—(हे वरद ! ) हे अभीष्टफलप्रद भगवन् (परि-जनविधेयत्रिभुवनः) दास जनों के समान त्रिभुवन जिसके वश में था ऐसे (बाणः) बलिपुत्र बाणासुर ने (परमोच्चैः सतीम् अपि) परमोत्कर्ष प्राप्त हुई भी (सुत्राम्णः ऋद्धिम्) इन्द्र की सम्पत्ति को (यद् अधः चक्रे) जो अपनी समृद्धि से नीची अर्थात् तुच्छ कर दिया था। भाव यह कि बाणासुर जो इन्द्र से भी अधिक समृद्ध हो गया था (तत्) सो वह अन्य के लिये दुर्लभ होने पर भी (त्वच्चरणयोः) आपके चरण कमलों में (वरिवसितरि तस्मिन्) नतमस्तक सेवक बाणासुर के लिये (न चित्रम्) कोई आश्चर्य की बात न थी क्योंकि (त्वयि शिरसः अवनतिः) आपके लिये नत मस्तक होकर प्रणाम करना (कस्यै उन्नत्यै न भवति) कौनसी उन्नति का कारण नहीं हो सकता किन्तु मुक्ति पर्यन्त फल को देनेवाला भी हो सकता है ॥१३॥

(१४) अब कालकूट का संहार दिखाते हुए भगवान की स्तुति करते हैं—

अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुरकृपा-

विधेयस्यासीद् यस्त्रिनयन विषं संहृतवतः ॥

स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो

विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभयभङ्गव्यसनिनः ॥१४॥

अन्वितार्थ—(हे त्रिनयन) सोमसूर्यबहिरूप त्रिनेत्रवाले भगवन् (अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुरकृपाविधेयस्य) असमय ही ब्रह्माण्ड के प्रलय की संभावना से भयभीत हुए ब्रह्मादि देवताओं के प्रति कृपापरवश हुए (विषं संहृतवतः) विष का भक्षण द्वारा उपशम करने वाले (तव कण्ठे) आपके कण्ठ में [यः] जो (कल्माषः आसीत्) कलङ्क अर्थात् काला चिह्न हो गया था (सः) वह (श्रियं न कुरुते न) आपकी शोभा नहीं करता यह नहीं किन्तु अवश्य ही परम शोभा को बढ़ाने वाला हुआ (अहो) बहुत आश्चर्य है कि (भुवनभयभङ्गव्यसनिनः) लोकत्रास के निवारण के व्यसनी अर्थात् स्वभाववाले परमेश्वर का (विकारः अपि) कालिमादिरूप विकार भी (श्लाघ्यः) प्रशंसनीय है ॥१४॥

(१५) त्रिभुवनविजयी काम के ऊपर भी विजय का कथन करते हुए भगवान शंकर की महिमा का कीर्तन करते हैं—

असिद्धार्था नैव कचिदपि सदेवासुरनरे

निर्वर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः ।



स पश्यन्नाश त्वामितरसुरसाधारणमभूत्

स्मरः स्मर्तव्यात्मा न हि वशिषु पथ्यः परिभवः ॥ १५ ॥

अन्वितार्थः—(हे ईश) हे सर्वजगन्नियामक देवाधिदेव महादेव (नित्यं जयिनः यस्य) नित्य जयशील जिस कामदेव के (विशिखाः) विजयीवाण (सदेवासुरनरे) देवासुर नरादि सहित (जगति कचित् अपि) जगत में प्रयोग किये हुए कहीं भी (असिद्धार्थाः) अकृतकार्य होकर (न एव निवर्तन्ते) नहीं लौटते अपि तु सदा सफल ही होते हैं (सः स्मरः) वह कामदेव (त्वाम्) आपको (इतरसुरसाधारणं पश्यन्) अन्यदेव के तुल्य साधारण समझकर ही (स्मर्तव्यात्मा अभूत्) केवल स्मरण का विषय ही रह गया अर्थात् नष्ट होगया था। इतरदेव के समान साधारण बुद्धि भगवान में करने से ही जब कामदेव को नाश प्राप्त रूप फल मिला फिर उनके पराभव करने की चेष्टावाला अवश्य ही नष्ट होगा इसमें क्या कहना है। (हि) क्योंकि (वशिषु) ईश्वरातिरिक्त जितेन्द्रिय पुरुषों का भी (परिभवः) पराभव अर्थात् तिरस्कार करना कदापि (पथ्यः न) हितकर नहीं हो सकता किन्तु अपने नाश का ही हेतु होता है तो जितेन्द्रियों के शिरोमणि आपके पराभव करने वाले नाश प्राप्त होंगे इसमें कहना ही क्या है ॥ १५ ॥

(१६) अब जगद्गुरु के लिये भगवान के तारुण्य नृत्य का निर्देश करते हुए भगवान की स्तुति करते हैं—

मही पादाघाताद् व्रजति सहसा संशयपदं

पदं विष्णोर्भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम् ।



मुहुर्द्यौर्दीस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा

जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता ॥१६॥

अन्वितार्थः—(हे ईश) हे जगन्नियामक (जगद्रक्षार्ता) सन्ध्या-  
काल में जगद्विनाश के लिये उद्यत वरलब्ध तथा बलसम्पन्न  
महान् राक्षस को मोहित कर जगत की रक्षा के लिये ही (त्वं  
नटसि) आप ताण्डव नृत्य करते हैं [परन्तु] किंतु आपके  
प्रकाण्ड ताण्डव के बल से यह जगत उस काल में रहेंगे कि  
ध्वस्त हो जायेंगे इस प्रकार संशय को प्राप्त हो जाते हैं क्योंकि  
(मही) यह भूलोक (पादाघाताद्) आपके चरणों के आघातों में  
(सहसा) शीघ्र ही (संशयपद प्रजति) संकटापन्न हो जाता है  
(विष्णोः पदम्) तथा विष्णु का लोक अर्थात् अन्तरिक्ष लोक  
भी (आम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम्) आपके परिघाकार उछलती  
हुई भुजाओं के आघात से—टूट रहे नक्षत्रगण जिसमें ऐसे-  
संशयास्पद बन जाता है (द्यौः) तथा स्वर्गलोक भी (अनिभृत-  
जटाताडिततटा) (न सँवारि हुई होने के कारण बन्धन मुक्त  
बिखरी हुई) खुली हुई लम्बी जटाओं की चोट से तट देश में  
(मुहुः) बारम्बार (दीस्थ्यं याति) दुरवस्था को प्राप्त हो जाता है ।  
इस प्रकार आप तो जगत की रक्षा के लिए ही नृत्य करते हैं  
किन्तु आपके नृत्य से यह जगत उलटा अस्वस्थ ही बन जाता  
है (ननु विभुता वामा एव) [भवति] अहो आश्चर्य है कि ईश्वरों  
की प्रभुता अर्थात् व्यापकता भी इस प्रकार प्रतिकूल ही पड़ती  
है अर्थात् कभी कभी उल्टी पड़ जाती है । ॥१६॥

(१७) अब श्री गंगाजी का शंकर भगवान के द्वारा जटाओं में धारण का वृत्तान्त प्रदर्शन करते हुए भगवान की अतुल महिमा का वर्णन करते हैं—

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः

प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते ॥

जगद्द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतम्—

त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिम दिव्यं तव वपुः ॥१७॥

अन्वितार्थ—(हे ईश) हे परमेश्वर (वियद्व्यापी) आकाश में व्याप्त (तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः) तथा तारागणों करके बद्धित है फेनकान्ति जिसकी ऐसा (यः वारां प्रवाहः) जो गंगाजल का प्रवाह (ते शिरसि) आपकी मस्तकस्थजटा में (पृषतलघुदृष्टः) बिन्दु से भी छोटा देखा गया था (तेन) उसी प्रवाह ने (जलधिवलयं जगत्) सप्तसमुद्र परिवेष्टित जगत को (द्वीपाकारं कृतम्) सप्तद्वीपात्मक कर दिया (इति अनेन एव) इसी वृत्तान्त से ही (तव दिव्यं वपुः) आपका दिव्य स्वरूप (धृतमहिम) सर्व से महत्तर (उन्नेयम्) जानने योग्य है । अगस्त्य के द्वारा पानकर लेने से सातों ही समुद्र जल से चिरकाल तक खाली पड़े थे सो भगीरथ के द्वारा लाई हुई गङ्गाजी के जल से भर गये थे उसी से यह सप्तदीपामेदिनी बन गई क्योंकि चारों ओर जलों से वेष्टित भूप्रदेश को द्वीप कहते हैं । जो गंगाजी का जलप्रवाह आपके मस्तकस्थ जटाओं में एक बिन्दु से भी छोटा दिखाई देता था उसी जलराशि

ने भागीरथी गङ्गा रूप से भूलोक के सातों समुद्रों को जल से भरदिया आकाशको भी मन्दाकिनी के रूपसे प्लावित किया और भोगवती नाम से पाताल को भी व्याप्त किया, इसी से आपकी अद्भुत महिमा जगद् विख्यात हो रही है ॥१७॥

(१८) अब अग्रिम श्लोक में त्रिपुरदाह के वृत्तान्त द्वारा भगवान् शंकर की स्वातन्त्र्य महिमा का वर्णन करते हैं—

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो

रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति ॥

दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि—

विधेयैः क्रीडन्त्यो नखलु परतन्त्राः प्रभुधियः ॥ १८ ॥

अन्वितार्थ—हे परमेश्वर (त्रिपुरतृणं दिधक्षोः) संकल्पमात्र से त्रैलोक्य संहार करने में समर्थ आपके लिए त्रिपुररूपी तृण को भस्म करने की इच्छा से (ते) आपने (क्षोणी रथः) जो पृथिवी को रथ बनाया था (शतधृतिः यन्ता) ब्रह्माजी को सारथी (अगेन्द्रः धनुः) पर्वत श्रेष्ठ मेरु को धनुष का कोदण्ड (अथ चन्द्रार्कौ रथाङ्गे) तथा चन्द्र सूर्य को रथचक्र अर्थात् रथ के दो पहिये (रथचरणपाणिः शरः) चक्रपाणी विष्णु को बाण बनाया था (इति) इस प्रकार (अयं कः आडम्बरविधिः) यह जो आडम्बर की रचना की गई थी उसकी क्या कोई आवश्यकता थी अर्थात् सर्वथा नहीं थी क्योंकि नख से छेदन करने योग्य तृणादि के छेदन के लिये लोक में कुठारादि महान शस्त्र का कौन उपयोग



करता है अतः स्वल्प प्रयोजन के लिये ऐसा महान प्रयास आपका उचित नहीं था तथापि इस प्रकार के आडम्बर रचने का यही कारण प्रतीत होता है कि (विधेयैः) अपने अनुचरों से (क्रीडन्त्यः) क्रीडा करनेवाले (प्रभुधियः) ईश्वर के संकल्प (खलु परतन्त्राः न) सर्वथा स्वतन्त्र ही होते हैं किसी प्रयोजन की अपेक्षा नहीं रखते ॥१८॥

॥१९॥ अब अग्रिम श्लोक में भगवान विष्णु की शिवभक्ति तथा तद्द्वारा फलोपलब्धि के पौराणिक वृत्तान्त कथनपूर्वक भगवान शंकर की अचिन्त्य महिमा का वर्णन करते हैं—

हरिस्ते साहस्रं कमलवलिमाधाय पदयो—

यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम् ॥

गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा

त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम् ॥१९॥

पुराणों में यह इतिहास प्रसिद्ध है कि एक समय श्री विष्णु भगवान ने श्री शंकर भगवान की पूजा के निमित्त सहस्र संख्याक कमलों का उपहार समर्पित किया था भगवान शंकर ने उनकी भक्ति परीक्षा के लिये एक कमल पुष्प गुप्त करदिया तब पूजा खण्डित ना हो इस अभिप्राय से विष्णु भगवान ने अपने कमल समान नेत्र उखाड़ कर न्यूनता की पूर्ति करके पूजा सम्पूर्ण की थी यह भक्त्यतिशय ही सुदर्शन चक्र के रूप में परिणत होकर त्रैलोक्य की रक्षा में जागरूक रहता है उसी उपाख्यान के

आधार पर कहते हैं कि—

अन्वितार्थ—(हे त्रिपुरहर) हे त्रिपुरान्तक भगवान शंकर ! (हरिः) भगवान विष्णु ने (ते पदयोः) आपके चरणों में (साहस्र कमलबलिम्) सहस्र संख्याक कमलपुष्पों का उपहार (आधाय) अर्पण करके (तस्मिन् एकोने) [सति] पूर्वोक्त कारण से उसमें एक पुष्प कम होजाने पर तत्काल अन्य कमल की उपलब्धि न होने के कारण (यत् निजं नेत्रकमलम्) जो कमल सदृश अपने नेत्र को (उदहरत्) उखाड़कर समर्पित कर दिया था (असौ भक्त्युद्रेकः) तादृश भक्ति-प्रकर्ष ही (चक्रवपुषा) सुदर्शन चक्र के रूप से (परिणतिं गतः) परिणत होकर (त्रयाणां जगताम्) तीनों लोक की (रक्षायै जागर्ति) रक्षा के लिये सावधान रहता है, आपका इस प्रकार अचिन्त्य माहात्म्य है ॥१६॥

(२०) इस प्रकार पूर्वोक्त श्लोकों में भगवदाराधन से सर्व पुरुषार्थ की प्राप्ति कही गई। परन्तु कुछ पूर्वमीमांसक कर्मकाण्डी लोग ईश्वर निरपेक्ष केवल कर्मजन्य धर्माधर्मरूप अदृष्ट द्वारा ही शुभाशुभ फल की प्राप्ति कथन करते हैं उनके निराकरण द्वारा भगवान की स्तुति करते हैं—

क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां

क कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते ॥

अतस्त्वां संप्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं

श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा दृढपरिकरः कर्मसु जनः ॥२०॥

अन्वितार्थ—हे त्रिपुरहर शंकर भगवन् ! (कतौ सुप्ते)  
[सति] यागादि कर्मों के स्वभाव से शीघ्र समाप्त होने पर  
(ऋतुमताम्) यागादि कर्मानुष्ठान करनेवाले को (फलयोगे)  
स्वर्गादि फल प्रदान के निमित्त (त्वं जाग्रत् असि) आप सर्वदा  
सावधान रहते हैं (प्रध्वस्तं कर्म) क्योंकि विनष्ट हुआ जड़ कर्म  
(पुरुषाराधनम् ऋते) चेतनदेव के आराधन किये बिना (क  
फलति) कहां फल दे सकता, क्योंकि लोक में भी राजसेवादि  
कर्म राजा के द्वारा ही फल प्रदान करता है (अतः त्वाम्)  
अतएव आपको ही (ऋतुषु) यज्ञों में (फलदानप्रतिभुवम्)  
फलदान का प्रतिभूः अर्थात् प्रतिनिधि—जामिन (सम्प्रेक्ष्य)  
सुनिश्चित करके (जनः) आस्तिक अधिकारी जन (श्रुतौ)  
“एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने,” ‘कर्माध्यक्षः’ इत्यादि फलदाता  
ईश्वर के प्रतिपादक श्रुति वाक्यों में (श्रद्धां बद्ध्वा) विश्वास  
रखकर (कर्मसु) श्रौत स्मार्त कर्मों में (दृढपरिकरः) [भवति।  
दृढ उद्यमवाले अर्थात् प्रवृत्त होते हैं।

पूर्वमीमांसक ईश्वर के बिना केवल कर्म से ही फल प्राप्ति  
मानते हैं सो बन नहीं सकता क्योंकि कर्म स्वभाव से जड़ है  
उसका फलदातृत्व चेतन सम्बन्ध के बिना हो नहीं सकता जैसे  
राजादि की सेवा लोक में चेतन राजादि के द्वारा ही फल देती  
है राजादि के बिना नहीं, उसी प्रकार कर्म भी अपूर्व उत्पादन  
करके—स्वभाव से आशुतर विनाशी होने के कारण—अनुष्ठान  
करते ही नष्ट हो जाते हैं तब वह ध्वस्त कर्म जड़ अपूर्व [धर्मा-



धर्मरूप अदृष्ट] द्वारा चेतन सम्बन्ध बिना कैसे फल देने में समर्थ होगा अर्थात् कदापि नहीं हो सकता, अतएव कर्म फल प्रदाता के रूप में ईश्वर को मानना आवश्यक है। वस्तुतस्तु विहित कर्मानुष्ठान द्वारा प्रसन्न परमेश्वर ही फलदाता होने से अदृष्ट पृथक् मानने की कोई आवश्यकता नहीं ॥२०॥

(२१) पूर्व श्लोक में भगवत् प्रसाद से ही शुभ कर्मफल की प्राप्ति कहकर धर्माख्य अपूर्व आवश्यक नहीं ऐसा कहा गया, अब धर्माख्य अपूर्व मानने की आवश्यकता न रहने पर भी निषिद्ध कर्मजन्य तथा विहिताकरणजन्य अशुभफल भगवत् प्रसाद साध्य न हो सकने के कारण अधर्माख्य अदृष्ट मानने की आवश्यकता का प्रतिपादन भी नहीं हो सकता क्योंकि राजादि की आज्ञा उल्लङ्घनजन्य अशुभफल प्राप्ति की न्याईं दृष्ट द्वारा पूर्वोक्त अशुभफल भगवान के अप्रसाद से ही प्राप्त हो सकता है इस वार्ता को दत्त प्रजापति के वृत्तान्त द्वारा कथन करते हुए भगवान शंकर का स्तवन करते हैं—

क्रियादत्तो दत्तः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृता—

मृषीणामात्विज्यं शरणद सदस्याः सुरगणाः ॥

क्रतुभ्रंशस्त्वत्तः क्रतुफलविधानव्यसनिनो

ध्रुवं कर्तुःश्रद्धा विधुग्मभिचाराय हि मखाः ॥२१॥

अन्वितार्थः—(हे शरणद) शरणागत की सर्वात्मना रक्षा करने वाले हे महादेव (क्रियादत्तः) अनुष्ठेय यज्ञादि कर्मों में

अत्यन्त प्रवीण अर्थात् कुशल, (तनुभृताम् अधीशः) शरीरधारी मात्र का स्वामी (दत्तः) ऐसे दत्तनामा प्रजापति (ऋतुपतिः) जिस यज्ञ में यजमान थे (ऋषीणाम् आत्विज्यम्) [आसीत्] तथा त्रिकालदर्शी भृगु आदि महर्षि ऋत्विग् थे अर्थात् यज्ञानुष्ठाता थे (सुरगणाः सदस्याः) [आसन्] तथा ब्रह्मेन्द्रादि देवगण सदस्य अर्थात् सभासद द्रष्टा थे, इस प्रकार सर्व सामग्री सम्पन्न वह यज्ञ था (ऋतुफलविधानव्यसनिनः) और आप स्वयं वैदिक यज्ञादि कर्मों के स्वर्गादि फल प्रदान करने में व्यसनी अर्थात् तत्पर हैं (त्वत्तः) तथापि ऐसे आपसे अर्थात् केवल आपके अप्रसाद से ही (ऋतुभ्रंशः) ऐसे महान यज्ञ का विध्वंस होगया था (ध्रुवम्) अतः यह निश्चित है कि (श्रद्धा विधुरंमखाः) यज्ञादि के फलदाता परमेश्वर के प्रति श्रद्धा भक्ति के बिना ही अनुष्ठान किये हुए यज्ञादि कर्म (कर्तुः) यजमान के (अभिचाराय हि) [भवन्ति] सर्वनाश के ही कारण बन जाते हैं ॥२१॥

(२२) अन्याय करनेपर ब्रह्मा को भी भगवान् शङ्कर ही शासन करने में समर्थ हैं इस प्रकार एक पौराणिक इतिहास के द्वारा भगवान् की स्तुति अग्रिम श्लोक से करते हैं:—

प्रजानाथं नाथ प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं

गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा ॥

धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुं

त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः ॥२२॥

अन्वितार्थः—(हे नाथ ! ) हे सर्वनियामक भगवन् (अभिकम्) कामुक अर्थात् काम के वशीभूत होने के कारण (स्वां दुहितरम्) अपनी अति सुन्दरी पुत्री सन्ध्या को (प्रसभं गतम्) बलात्कार से धर्षण करने के लिये उद्यत हुए देखकर [ततो लज्जया] कन्या के प्रति पिता का ऐसे अनुचित व्यवहार से लज्जित होकर (रोहिद्भूतां) [ताम्] मृगी का रूप धारण करने वाली भी उस कन्या सन्ध्या के साथ (ऋष्यस्य वपुषा) मृग शरीर से-मृग शरीर धारण करके (रिरमयिषुम्) रमण करने की इच्छा वाले (प्रजानाथम्) प्रजापति ब्रह्माजी को (धनुष्पाणेः) हाथ में धनुष धारण करने वाले (मृगव्याधरभसः) मृग शिकारी के समान अति उत्साह तथा वेग सम्पन्न (ते) [तादृशः बाणः] आपके बाण ने (दिवं यातम् अपि) अन्तरीक्ष अर्थात् आकाश में गये हुए को भी (सपत्राकृतम्) वेधन द्वारा पीड़ित कर दिया था [अतः] उससे (त्रसन्तम् अमुम्) भयभीत हुए मृगशिरा नक्षत्ररूपी उस ब्रह्माजी को आर्द्रारूपी वह बाण (अद्यापि न त्यजति) अद्यावधि-आज तक-भी परित्याग नहीं करता अर्थात् सदा सन्निकट में ही दण्डविधानार्थ स्थित है ॥

पुराणों में यह इतिहास प्रसिद्ध है कि-एक समय अत्यन्त रूपवती अपनी कन्या सन्ध्या को देखकर ब्रह्माजी कामाकुल होकर उससे बलात्कार करने को उद्यत हुए थे । तब वह कन्या 'यह ब्रह्माजी पिता होकर मुझसे अनुचित व्यवहार करते हैं, इस लज्जा से मृगीरूप हो गई थी । तब उसको ऐसी



देखकर ब्रह्माजी ने भी रत्यर्थं मृग का ही रूप धारण किया । इस प्रकार के उस अनुचित व्यवहार को देखकर त्रैलोक्य नियन्त्रण करनेवाले भगवान शंकर ने 'यह प्रजापति धर्म का प्रवर्तक होता हुआ भी निन्दित कर्म करना चाहता है, इस अपराध के कारण मेरे द्वारा अवश्य दण्डनीय है' ऐसा विचार कर पिनाकधनुष को चढ़ा कर एक बाण निक्षेप किया । तब वह ब्रह्माजी लज्जित तथा पीड़ित होकर मृगशिरानामक नक्षत्ररूप होगया था । तब भगवान शंकर का बाण भी आर्द्रा नक्षत्र का रूप धारण कर उसके पश्चाद्भाग में स्थित हुआ । इस प्रकार आर्द्रा और मृगशिरा का सर्वदा सन्निधान होने के कारण 'आज भी वह बाण विधिरूप ब्रह्माजी का पीछा नहीं छोड़ता' ऐसा कहा है ॥२२॥

(२३) अब आगे श्लोक में कामदेव को भी भस्म करने वाले जितेन्द्रियश्रेष्ठ महादेवजी ने करुणापरवश होकर पार्वतीजी का धारण वामाङ्गमें किया ऐसी परस्पर विरुद्ध बातों का सामञ्जस्य अतुलमहिमा सम्पन्न केवल शङ्कर भगवान में ही है इसके प्रतिपादन द्वारा भगवान की महिमा का स्तवन करते हैं—

स्वलावण्याशंसाधृतधनुषमहाय तृणवत्

पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन पुष्पायुधमपि ॥

यदि स्त्रैणं देवी यमनिरत देहार्थघटना—

दधैति त्वामद्वा बत वग्द मुग्धा युवतयः ॥२३॥

अन्वितार्थः—(हे पुरमथन) हे त्रिपुरान्तक, (हे यमनिरत)

हे यमनियमादिअष्टाङ्गयोग परायण महादेव ! (स्वलावण्याशंसा-  
धृतधनुषम्) पार्वती के सौन्दर्यातिशयद्वारा शंकर भगवान को  
भी मैं वश करलूंगा इस आशा से जिसने धनुष धारण किया  
था (पुष्पायुधम्) ऐसे कामदेव को (अहाय) शीघ्र ही (तृणवत्)  
तृण के समान (पुरः) समक्ष (प्लुष्टम्) भस्म हुए (दृष्ट्वा) देखकर  
(अपि) भी (देवी) देवी भगवती पार्वती (देहार्धघटनात्)  
आपके देह के वामार्धभाग में सर्वदा धारण करने से (त्वाम्)  
आपको (यदि) यदि (स्त्रैणं) स्त्रीलम्पट (अवैति) समझती है  
तो (अद्धा) यह युक्त ही है क्योंकि (हे वरद) हे वरद (वत)  
अहो (युवतयः) स्त्रियां (मुग्धाः) स्वभाव से मूढ़ ही होती हैं ॥

यहां वस्तुतः अयुक्त को भी युक्त कहने का भाव यह है कि  
स्त्रियों के विभूषणों में प्रधान मुग्धता का अनुकरण करती हुई  
चित्तिस्वरूपा भी भगवती पार्वती का यथोक्त मिथ्याज्ञान भी  
युक्त ही है ॥२३॥

(२४) अब अग्रिम श्लोक में 'स्वयं मंगलरहित पुरुष के समान  
व्यवहार करते हुए भी भगवान शङ्कर भक्तों को परम मंगल ही  
प्रदान करते हैं'—इस प्रकार भगवान की असीम शक्ति का सूचन  
करते हुए स्तुति करते हैं—

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचरा-

श्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः ॥

अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नमैर्मखिलं

तथापि स्मर्तृणां वरद परमं मङ्गलमसि ॥२४॥



अन्वितार्थ—( हे स्मरहर ) हे कामान्तक महादेव ! (श्मशानेषु) श्मशानों में (आक्रीडा) आप विहार करते हैं (पिशाचाः सहचराः) पिशाच आपके सहचारी अर्थात् सदैव आपके साथ रहनेवाले हैं (चिताभस्म) चिता का भस्म ही (आलेपः) आपका अङ्गराग है अर्थात् चिताभस्म का ही लेप अङ्ग में आप करते हैं (नृकरोटीपरिकरः) मनुष्यों की खोपड़ियों का समूह ही (स्रक) आपकी माला-गले में आप धारण करते हैं (अपि) और आर्द्र गजचर्म को भी ओढ़ते हैं [एवं] इस प्रकार (तव) आपका (अखिलं शीलम्) सम्पूर्ण शील अर्थात् चरित्र (अमङ्गल्यम्) अमङ्गलस्वरूप (भवतु नाम) भले ही हो (तथापि) फिर भी (हे वरद) हे अभीष्टफलप्रदाता महादेव ! (स्मर्तृणाम्) आपके स्मरण करने वाले के लिये (परमं मङ्गलम् असि) आप परम मङ्गलरूप ही हैं । यही आपकी आलौकिक महिमा है कि स्वयं अमङ्गलचारी होते हुए भी भक्तों का परम मङ्गल विधान करते हैं ॥२४॥

(२५) “अतीतः पन्थानम्” इस द्वितीय श्लोक में भगवान् की त्रिधा महिमा का उपक्रम करके सगुण तथा अर्वाचीन स्वरूप का वर्णन अबतक ग्रन्थ से किया गया; अवशिष्ट निर्गुण स्वरूप का वर्णन करने के लिये अग्रिम ग्रन्थ है । इसमें भी “परमं मङ्गलमसि” वाक्य से पूर्व श्लोक में भगवान् को सुखस्वरूप कहा क्योंकि मङ्गल नाम सुख का ही है । किन्तु नैयायिक पातञ्जलादि मतानुयायिओं के लिए यह विवादास्पद है क्योंकि वे भगवान्



को सुखस्वरूप तथा अद्वितीयरूप भी नहीं मानते हैं। उस विवाद का समाधान करते हुए अग्रिम श्लोक में भगवान की अद्वितीय सुखरूपता में विद्वदनुभवरूप प्रत्यक्षप्रमाण का उपन्यास करते हुए उनकी स्तुति करते हैं—

मनः प्रत्यक् चित्ते सविधमवधायान्तमरुतः

प्रहृष्यद्गोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः ॥

यदालोक्याह्लादं हृद इव निमज्ज्यामृतमये

दधत्यन्तस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत् किल भवान् ॥२५॥

अन्वितार्थः—हे वरद ! (यमिनः) शमदमादि साधन सम्पन्न योगी परमहंसजन (सविधम्) शास्त्रोक्त मार्ग से (आन्तमरुतः) प्राणायाम के अभ्यास द्वारा प्राणगति को अपने वश किये हुए (प्रत्यक् मनः) अन्तर्मुख मन को (चित्ते अवधाय) हृदय कमल में निरुद्ध अर्थात् वृत्तिरहित करके (यत् किम् अपि तत्त्वम्) सत्य - ज्ञान - अनन्त - आनन्दस्वरूप जिस तत्त्व को (आलोक्य) वेदान्तवाक्यजन्य वृत्ति द्वारा साक्षात्कार करके अर्थात् ब्रह्मानन्द का अनुभव करके (प्रहृष्यद्गोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः) प्रकृष्टपुलकितांग तथा हर्षाश्रुपूर्ण नेत्र वाले हुए (अमृतमये हृदे) अमृत भरे हुए हृद में (निमज्ज्य इव) निमग्न हुए पुरुष की न्याई (अन्तराह्लादम्) बाह्यसुख से विलक्षण भूमशब्दवाच्य निरतिशय सुख को (दधति) धारण करते हैं (तत् किल) वह श्रुतिप्रसिद्ध तत्त्व (भवान्) आप ही हैं ॥

प्रत्यक्षप्रमाण

भगवान् आनन्दस्वरूप हैं इसमें ज्ञानवानों का अनुभवरूप प्रत्यक्षप्रमाण इस श्लोक में कहा । जिस तत्त्व के आलोकनमात्र से तत्त्वज्ञानीजन परमसुख का अनुभव करते हैं वह भगवत्तत्त्व परम सुखरूप है इसमें क्या कहना है । “विज्ञानमानन्दं ब्रह्म”, “यो वै भूमा तत्सुखम्” इत्यादि श्रुतियों से भी भगवत्तत्त्व अद्वितीय आनन्दस्वरूप ही सिद्ध होता है । अतः भगवान् आनन्दस्वरूप नहीं हैं इस प्रकार तार्किकादिवादिओं का मत अयुक्त है ॥२५॥

(२६) विद्वदनुभवरूप प्रत्यक्षप्रमाण के द्वारा सर्वात्मक भगवान् की आनन्दस्वरूपता पूर्व श्लोक में कही गई । अब उसी भगवान् की अद्वितीयरूपता का तर्कद्वारा भी प्रतिपादन करते हुए भगवान् का स्तवन करते हैं—

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-

स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वम् धरणिरात्मा त्वमिति च ।

परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता विभ्रतु गिरं

न विद्वस्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि ॥२६॥

अन्वितार्थः—हे सर्वात्मन् भगवन् ! (परिणताः) परिपक्वबुद्धि वाले आगमानुसारी कतिपय विद्वज्जन (त्वयि) आपके विषय में (त्वम् अर्कः) आप सूर्यमूर्ति हैं (त्वं सोमः) तथा आप चन्द्रस्वरूप हैं, (त्वं पवनः) आप वायुरूप हैं, (त्वं हुतवहः) आप अग्नि हैं, (त्वम् आपः) आप ही जल हैं, (त्वं व्योम) आप ही आकाश, (त्वम् उ धरणी) आप ही पृथिवी हैं, (त्वम् आत्मा च असि) और



आप ही यजमानरूप क्षेत्रज्ञ हैं (इति एवम्) इस प्रकार (परिच्छिन्नां गिरम्) परिच्छिन्न वाणी को अर्थात् आपके परिमित [अल्प] स्वरूप के प्रतिपादक वाणी को (विभ्रतु) भले ही धारण करते हों (तु) किन्तु (वयम्) हम (इह) इस संसार में (तत् तत्त्वम्) ऐसे किसी तत्त्व को (न विद्मः) नहीं जानते (यत् त्वं न भवसि) जो आप नहीं, अर्थात् आपसे भिन्न कुछ भी नहीं है, किन्तु आपको सर्वात्मक अद्वितीयरूप ही हम जानते हैं।

भगवान् के एतादृश स्वरूप का प्रतिपादक श्रुतियुक्ति भी है—  
‘एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति’ ‘इदं सर्वं यदयमात्मा’ ‘सदेव सोम्येदमग्र आसीत्’ इत्यादि श्रुति हैं। और तर्क रूप युक्ति यह है—सत् का ही अनुगम सर्वत्र ‘सन् घटः सन् पटः’ इत्यादि प्रतीति से ज्ञात होता है, सद्भिन्न कुछ भी प्रतीत नहीं होता। इस युक्ति से भी परमेश्वर की सर्वात्मकता तथा अद्वितीयता सिद्ध होती है ॥२६॥

(२७) प्रत्यक्षादि प्रमाणों के द्वारा सर्वात्मक तथा अद्वितीय भगवत्स्वरूप का प्रतिपादन करके अब आगम से भी उसी का प्रतिपादन करते हुए भगवान् की स्तुति करते हैं—

अथवा सर्वमन्त्रश्रेष्ठ प्रणव आपका ही प्रतिपादन करता है इस प्रकार कथन द्वारा भगवान् की स्तुति करते हैं—

त्रयीं तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा-  
नकाराद्यै र्वर्णैस्त्रिभिरभिदधतीर्णं विकृति ।



तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः

समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमिति पदम् ॥२७॥

अन्वितार्थ—(हे शरणद) हे सर्वाभयप्रद भगवन् (व्यस्तम्)

अकार उकार मकार इस प्रकार स्वतन्त्र तीन अवयववाला व्यस्त (ओम् इति पदम्) ओम् इत्याकारक पद (त्रयीम्) ऋक् यजुः सामात्मक तीनों वेद (तिस्रः वृत्तीः) तथा जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तीनों अवस्थाएँ तथा अवस्थात्रय से उपलक्षित विश्व तैजस प्राज्ञ (त्रिभुवनम्) भूः भुवः स्वः ये तीनों लोक तथा उससे उपलक्षित विराट् हिरण्यगर्भ अव्याकृत (अथो त्रीन अपि सुरान्) और ब्रह्मा विष्णु महेश्वर तीनों देवता तथा तदुपलक्षित सृष्टि स्थिति प्रलय इन सब को (अकाराद्यैः त्रिभिः वर्णैः) अकार उकार मकार तीन वर्णों के द्वारा (अभिदधत्) शक्तिवृत्त्या कथन करता हुआ [व्यस्तं] (त्वां गृणाति) त्रयी आदि रूप से विभिन्न व्यस्त स्वरूप आपका [अवयव शक्ति से] प्रतिपादन करता है । (समस्तम्) तथा तीनों पदों के कर्मधारय समास से सिद्ध [ओम् इति पदम्] ओमित्याकारक समस्त पद (ते तीर्णविकृति) आपके सर्व विकारातीत (तुरीयं धाम) तुरीय धाम को अर्थात् अवस्थात्रयभिमानी से विलक्षण अखण्ड चैतन्यात्मक स्वरूप को (अणुभिः ध्वनिभिः) अर्धमात्रा के प्लुतोच्चारण के प्रभाव से उत्पन्न हुए सूक्ष्म ध्वनियों के द्वारा (अवरुन्धानम्) लक्षणया समुदायवृत्त्या बोधन करता हुआ [समस्तं त्वां गृणाति] सर्वात्म-स्वरूप आपका प्रतिपादन करता है ॥

तात्पर्य यह है कि—स्थूल प्रपंच से उपहित चैतन्य अकार का वाच्यार्थ है, और स्थूलप्रपंचांश का परित्याग कर केवल चैतन्य लक्ष्यार्थ है। सूक्ष्म प्रपंच से उपहित चैतन्य उकार का वाच्यार्थ है और सूक्ष्म प्रपंचांश का परित्याग करके शुद्ध चैतन्य लक्ष्यार्थ है। तथा स्थूल सूक्ष्म प्रपंच का कारण मायोपहित चैतन्य मकार का वाच्यार्थ है और तादृश मायांश का परित्याग करके चैतन्यमात्र मकार का लक्ष्यार्थ है। इसी प्रकार तुरीयत्व सर्वानुगतत्व धर्म से उपहित चैतन्य अर्धमात्रा का वाच्यार्थ है और उस उपाधि का परित्याग करके चैतन्यस्वरूपमात्र अर्धमात्रा का लक्ष्यार्थ है। इस प्रकार से चारों के सामानाधिकरण्य द्वारा अभेदार्थ का बोध होने पर परिपूर्ण अद्वितीय वस्तु ही द्वैतोपमर्दन-पूर्वक सिद्ध होती है। क्योंकि लक्षणा से त्याग की हुई उपाधियां माया और उसका कार्यरूप होने से मिथ्या ही होती है। इसलिए स्वरूप के बोध से स्वरूप के अज्ञानरूप माया और मायाकार्य की निवृत्ति होने से द्वैत की पृथक् अवस्थिति सम्भव नहीं। अतः वास्तव में सम्पूर्ण जगत् अद्वितीय प्रत्यगभिन्न ब्रह्म स्वरूप है, यही प्रणव का तात्पर्य सिद्ध होता है ॥२७॥

(२=) पूर्व श्लोक में अद्वितीय ब्रह्म का बोधक प्रणव का उपन्यास किया। उसके जपादि से सर्वपुरुषार्थ की सिद्धि हो सकती, “तस्य वाचकः प्रणवः” इस पातञ्जल सूत्र से तथा “एतदालम्बनं श्रेष्ठम्” इत्यादि श्रुति से भी पूर्वोक्त अर्थ की सिद्धि होती है, अब अग्रिम श्लोक में जिनका प्रणवजप में



अधिकार नहीं है उनको भी सर्वपुरुषार्थ प्राप्ति के लिए सर्व-साधारणोपयोगी प्रसिद्ध भगवत्स्वरूप बोधक शब्दों का जप करना चाहिये इस बात का कथन करते हुए भगवत्स्तुति करते हैं—  
अथवा—अद्वितीय ब्रह्म बोधक प्रणव के जप से सर्वपुरुषार्थ की सिद्धि हो सकती इस अभिप्राय से जपाद्यर्थ अद्वैतब्रह्मवाचक प्रणव का उपन्यास पूर्व श्लोक में किया, किन्तु निगूढार्थ होने से वह सर्वसाधारण नहीं हो सकता, इसलिए सर्वसुगमतार्थ भगवान के सर्वसाधारण प्रसिद्ध भव आदि अष्ट नामों का जपार्थतया कथन करने के लिए भगवान की स्तुति करते हैं—

भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिर्गुणः सहमहां—

स्तथाभीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम् ॥

अमुष्मिन् प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि

प्रियायास्मै धाम्ने प्रविहितनमस्योऽस्मि भवते ॥२८॥

अन्वितार्थः—(हे देव) हे निखिलशरणद स्वप्रकाशरूप भगवन् !  
(भवः) जगदुत्पत्ति का कर्ता होने से भव, (शर्वः) सर्वसंहारकर्ता होने से शर्व, (रुद्रः) राक्षसादिओं को रोदन कराने वाला होने से अथवा भक्तों के दुःख का नाश करने वाला होने से रुद्र, (पशुपतिः) जीवों का स्वामी अर्थात् पाशविमोचक होने से पशुपति, (अथ उग्रः) और पापीजनों के लिए तोक्षण होने से उग्र, (सहमहान्) महादेव होने से सहमहान् (तथा भीमेशानौ) तथा विधिनिषेध उल्लङ्घन करने वाले के लिए भीम अर्थात् भयङ्कर और सर्वनियन्ता होने से ईशान (इति इदं यत् अभि-



धानाष्टकम्) इस प्रकार ये जो आपके आठ नाम हैं (अमुष्मिन् प्रत्येकम्) इनमें प्रत्येक नाम में (श्रुति अपि) वेद भी (प्रविचरति) प्रविचरण करता है अर्थात् प्रत्येक नाम को वेदादि शास्त्र भी जपादि द्वारा सर्वपुरुषार्थ साधकतया प्रतिपादन करता है। (प्रियाय) जिनके नामों के जपादि से परमपुरुषार्थ की प्राप्ति होती है ऐसे सर्वात्मकत्वेन परमप्रेमास्पद (अस्मै धाम्ने) सदा अपरोक्ष स्वयंप्रकाश चैतन्यरूप (भवते) आप के लिए (प्रविहितनमस्यः अस्मि) भूयोभूयः प्रणाम करता हूँ ॥२८॥

(२६) परस्पर विरुद्धार्थक विशेषणों के द्वारा भगवान की दुरुह महिमा का वर्णन करते हुए भक्त्यतिशय के कारण पुनः पुनः नमस्कार पूर्वक भगवान् का स्तवन करते हैं—

नमो नेदिष्ठाय प्रियदव दविष्ठाय च नमो

नमः नोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः ॥

नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो

नमः सर्वस्मै ते तदिदमितिसर्वाय च नमः ॥२९॥

अन्वितार्थः—(हे प्रियदव) प्रिय है निर्जनवनविहार जिसको ऐसे हे भगवन् (नेदिष्ठाय) ज्ञानवानों के लिये तो सर्वात्मकरूप होने के कारण अत्यन्त निकटवर्ती, और “दूरात सुदूरे तदि-  
हान्तिके च” इस श्रुति के अनुसार अन्तर्मुख मुमुक्षुओं के लिये सद्यः प्राप्तव्य होने के कारण भी अत्यन्त निकटवर्ती; तथा (दविष्ठाय च) अविवेकी बहिर्मुखों के लिये कोटीकल्प में भी

दुष्प्राप्य होने के कारण अत्यन्त दूरवर्ती; अथवा सर्वत्र व्यापक होने के कारण आकाश की न्यौँई अत्यन्त समीप तथा अतिदूर भी (ते नमोनमः) आपको पुनःपुनः नमस्कार है । (हे स्मरहर) हे कामान्तक (क्षोदिष्याय महिष्याय च) “अणोरणीयान् महतो महीयान्” इस श्रुति के अनुसार सूक्ष्मतया अणु से भी अधिक अणु तथा व्यापक होने से महान् आकाश से भी अधिक महान्, अथवा अतिक्षुद्र शरीरादिके सम्बन्ध से अतिक्षुद्र तथा अतिमहान् शरीरादि उपाधि के सम्बन्ध से अतिमहान् [तुभ्यम्] आपको (नमोनमः) बारम्बार नमस्कार है । (हे त्रिनयन) हे त्रिनेत्र ! (वर्षिष्याय यविष्याय च नमो नमः) “त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी, त्वं जीर्णो दण्डेनाश्रसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः” इस श्रुति के अनुसार वृद्ध से भी अधिक वृद्ध तथा युवा से भी अधिक युवा आपको पुनः पुनः नमस्कार है । (सर्वस्मै ते नमः) “इदं सर्वं यदयमात्मा” इस श्रुति के अनुसार सर्वात्मक आपको नमस्कार । (तदिदमितिसर्वाय च नमः) परोक्ष तथा प्रत्यक्ष इस प्रकार अनिर्वचनीय सर्व प्रपञ्च जिसमें आरोपित है ऐसे सर्वाधिष्ठानरूप निर्विकार आपको नमस्कार है । अथवा (अतिसर्वाय) इस पाठान्तर के अनुसार सर्वातिक्रान्त—सर्व प्रपञ्च से विलक्षण अर्थात् संबन्धशून्य आपको नमस्कार है ॥२६॥

(३०) अब पूर्वोक्त सम्पूर्ण अर्थों का संक्षेपपूर्वक नमस्कार करते हुए भगवान की स्तुति का उपसंहार करते हैं—

बहलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमोनमः

प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमोनमः ॥

जनसुखकृते सत्त्वोद्रिक्तौ मृडाय नमोनमः

प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमोनमः ॥३०॥

अन्वितार्थः—(विश्वोत्पत्तौ) चराचर विश्व की सृष्टि के निमित्त (बहलरजसे) रजोगुण प्रधान ब्रह्ममूर्तिस्वरूप (भवाय नमो नमः) भव नाम से प्रसिद्ध आपको पुनः पुनः नमस्कार है। (तत्संहारे) तथा उस विश्व के संहार के निमित्त (प्रबलतमसे) सत्त्व रजः गुणों से अनभिभूत तमोगुण प्रधान रुद्रमूर्ति स्वरूप (हराय नमो नमः) हर नाम से प्रसिद्ध आपको बारम्बार नमस्कार है। (जनसुखकृते) विश्व के समग्र प्राणियों के सुख के निमित्त अर्थात् विश्व के पालनार्थ (सत्त्वोद्रिक्तौ) सत्त्वगुण प्रधान प्रकृति में अवस्थित विष्णुमूर्तिस्वरूप (मृडाय नमो नमः) मृड नाम से प्रसिद्ध आपको भूयोभूयः नमस्कार है। अथवा (सत्त्वोद्रिक्तौ जनसुखकृते मृडाय नमो नमः) सत्त्वाधिक्य होने पर विश्व के पालनार्थ—सर्वजनों के सुख करने के निमित्त विष्णुमूर्ति स्वरूप मृड नाम से प्रसिद्ध आपको भूयोभूयः नमस्कार है। तथा (निस्त्रैगुण्ये) त्रिगुणातीत (प्रमहसि पदे) सर्वोत्तम प्रकाशरूप मोक्षपद के निमित्त अथवा मोक्षपद में स्थित—नित्यमुक्त (शिवाय) अतएव शिवस्वरूप अर्थात् परम मंगल स्वरूप आपको (नमो नमः) पुनः पुनः नमस्कार है ॥३०॥



(३१) भगवान की इस प्रकार आलौकिक स्तुति करके भी “मम त्वेतां वाणीम्” इस श्लोक में उपक्रान्त स्वकीय अनौद्धत्य का उपसंहार अनन्तर श्लोक से करते हैं—

कृशपरिणति चेतः क्लेशवश्यं क्व चेदं

क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वदृद्धिः ॥

इति चकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधाद्

वरद चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम् ॥३१॥

अन्वितार्थः—(हे वरद) हे सर्वाभीष्टप्रद ! (कृशपरिणति) अति अल्पज्ञ (क्लेशवश्यं च) तथा अविद्यादि क्लेशों के परवश अर्थात् सर्वदा रागादि दोषों करके मलिन, अथवा (क्लेशवश्यं) कठिनता से वश में आने वाला (कृशपरिणति च) अतएव आपके गुण वर्णन करने में नितान्त अयोग्य, (इदं चेतः क) मेरा यह मन कहां; (च गुणसीमोल्लङ्घिनी) और त्रिगुण की सीमा को उल्लङ्घन करनेवाली अर्थात् असीम (तव) आपकी (शश्वदृद्धिः क) नित्य महिमा कहां; (इति) इस कारण से (चकितं माम्) भयभीत हुए मुझको (अमन्दीकृत्य) उत्साहित अर्थात् बलात् स्तुति में प्रवृत्त करके (ते भक्तिः) आपकी भक्ति ने (वाक्यपुष्पोपहारम्) मेरे वाक्यरूप पुष्पों का उपहार [तव] (चरणयोः) आपके चरणों में (आधात्) समर्पित करवाया है ।

सात्पर्य यह—जो कुछ भी स्तुति आपकी मैंने की वह केवल आपकी भक्ति का ही प्रभाव है, मुझमें कोई सामर्थ्य नहीं था ।

इसलिये मेरे सर्वापराधों को क्षमा करके परम करुणामय आप मेरी भक्ति का ही उद्दीपन करें ॥३१॥

(३२) अब अग्रिम श्लोक से भगवान के गुणों की अनन्तता का वर्णन करते हैं—

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे

सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी ॥

लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं

तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥३२॥

अन्वितार्थः—(हे ईश) हे सर्वनियामक परमेश्वर ! (सिन्धुपात्रे) यदि समुद्र रूप पात्र में—दवात में (असितगिरिसमम्) नील-गिरि के समान (कज्जलं स्यात्) स्याही हो अर्थात् डाली गई हो (सुरतरुवरशाखाः लेखनी) तथा कल्पवृक्ष की समस्त शाखायें लेखनी बनाई गई हों (उर्वी पत्रम्) और सम्पूर्ण पृथिवी को पत्र रूप बनाया जाय (शारदा) और फिर साक्षात् शारदा भगवतो इन सब को लेकर (यदि सर्वकालं लिखति) यदि सदैव अर्थात् अनन्त काल तक लिखती रहे (तदपि) तथापि (तव गुणानाम्) आपके गुणों का (पारं न याति) पार नहीं पा सकती क्योंकि आपके गुण अनन्त हैं ॥३२॥

(३३) अब ग्रन्थकार अपना परिचय दे रहे हैं—

असुरसुरमुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दुमौले-

ग्रथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य ॥

सकलगणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो

रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार ॥३३॥

अन्वितार्थः—(सकलगणवरिष्ठः) समस्त गन्धर्वों का राजा (पुष्पदन्ताभिधानः) पुष्पदन्त नामक गन्धर्व ने (असुरसुरमुनीन्द्रैः अर्चितस्य) सुर असुर तथा बड़े-बड़े मुनियों के द्वारा पूजित, (प्रथितगुणमहिम्नः) जिनके गुण गण की महिमा पुराणादिओं में वर्णित है, (निर्गुणस्य) परन्तु वस्तुतः जो निर्गुण (ईश्वरस्य) सर्वेश्वर हैं (इन्दुमौलेः) ऐसे भगवान् चन्द्रशेखर के (एतत् रुचिरं स्तोत्रम्) इस मनोहर स्तोत्र की (अलघुवृत्तैः) शिखरिणी छन्द वाले बड़े श्लोकों के द्वारा (चकार) रचना की है ॥३३॥

(३४) अब आगे के श्लोकों में इस स्तोत्र के विधिवत् पाठ का माहात्म्य कहते हैं—

अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत्

पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान् यः ॥

स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथाऽत्र

प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान् कीर्तिमांश्च ॥३४॥

अन्वितार्थः—(यः पुमान्) जो कोई पुरुष (शुद्धचित्तः) शुद्ध चित्त होकर (परमभक्त्या) परम भक्ति से (धूर्जटेः) बृहज्जटा-मण्डल सुशोभित धूर्जटि शङ्कर भगवान् के (अनवद्यम्) सर्व दोषनिर्मुक्त परम पावन (एतत् स्तोत्रम्) इस स्तोत्र को (अहरहः) प्रतिदिन (पठति) पढ़ता है (स शिवलोके) वह मृत्यु के अनन्तर



शिवलोक में (रुद्रतुल्यः) रुद्र के समान स्वरूपवान् होकर अनन्त काल निवास करता है । (तथा अत्र) और इस लोक में (प्रचुर-तरधनायुः) प्रचुर धनाढ्य तथा चिरायुः होकर (पुत्रवान्) पुत्र-पौत्रादि सन्ततिवाला (कीर्तिमान् च) और यशस्वी (भवति) होता है ॥३४॥

(३५) पूर्ववत् महिम्नः स्तोत्र के पाठ का उत्कर्ष कथन करते हैं—

दीक्षा दानं तपस्तीर्थं ज्ञानं यागादिकाः क्रियाः ।

महिम्नःस्तवपाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३५॥

अन्वितार्थः—(दीक्षा) व्रतादि दीक्षा (दानम्) गौधनादि का दान (तपः) तप (तीर्थम्) तीर्थ सेवन (ज्ञानम्) उपासन (यागादिकाः क्रियाः) यागादि कर्म ये सब फल प्रदान में (महिम्नःस्तव पाठस्य) महिम्नः स्तुति पाठ के (षोडशीं कलाम्) षोडश अंश के तुल्य भी (न अर्हन्ति) होने योग्य नहीं है ॥३५॥

(३६) प्रकृत स्तुति का उत्कर्ष कहते हैं—

आसमाप्तमिदं स्तोत्रं पुण्यं गन्धर्वभाषितम् ।

अनौपम्यं मनोहारि शिवमीश्वरवर्णनम् ॥३६॥

अन्वितार्थः—(आसमाप्तम्) समाप्ति पर्यन्त (इदं स्तोत्रम्) यह स्तोत्र (गन्धर्वभाषितम्) गन्धर्वराज के द्वारा कीर्तन किया गया है । यह स्तोत्र (पुण्यम्) परम पवित्र, (अनौपम्यम्) उपमारहित (मनोहारि) महोहर, (शिवम्) परम मंगलमय (ईश्वर वर्णनम्) परमेश्वर का वर्णनरूप है ॥३६॥

अथवा—(आसमाप्तम्) समाप्ति पर्यन्त (गन्धर्वभाषितम्) गन्धर्वराज पुष्पदन्ताचार्य के द्वारा कीर्तन किया गया (इदं स्तोत्रम्) यह स्तोत्र (पुण्यम्) परम पवित्र (अनौपम्यम्) निरुपम (मनोहारि) मनोहर (शिवम्) परम मंगलमय (ईश्वरवर्णनम्) परमेश्वर का वर्णनरूप है ॥३६॥

(३७) अनेक दृष्टान्तों के द्वारा भी प्रकृत उत्कर्ष का वर्णन करते हैं—

महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः ।

अघोरान्नापरो मन्त्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥३७॥

अन्वितार्थः—(महेशात्) जैसे महेश्वर से (अपरः देवः) बड़ा कोई अन्य देवता (न) नहीं है (अघोरात्) अघोर मन्त्र से (अपरः मन्त्रः) उत्कृष्ट कोई दूसरा मन्त्र (न) नहीं, (गुरोः परम्) गुरु से बढ़कर (तत्त्वं न) कोई तत्त्व नहीं, उसी प्रकार (महिम्नः) महिम्नः स्तोत्र से (अपरा स्तुतिः) उत्तम कोई दूसरी स्तुति (न अस्ति) नहीं है ॥३७॥

(३८) अब इस महिम्नः स्तोत्र की रचना में प्रवृत्ति का निमित्त कथन करते हैं—

कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः

शिशुशशिधरमौले देवदेवस्य दासः ॥

स खलु निजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषात्

स्तवनमिदमकार्षीद् दिव्यदिव्यं महिम्नः ॥३८॥

अन्वितार्थः—(शिशुशशिधरमौलेः) मूर्धा में बालचन्द्र धारण करने वाले (देवदेवस्य) देवाधिदेव महादेव भगवान् का (दासः) सेवक (कुसुमदसननामा) पुष्पदन्त नाम से प्रसिद्ध (सर्वगन्धर्व-राजः) सर्वगन्धर्वों का राजा (अस्य) भगवान् शङ्कर के (रोषात् एव) निर्माल्योल्लङ्घनजनित कोप से ही (निजमहिम्नः) अपनी अन्तरिक्ष-गमन-अन्तर्धानादि शक्ति से (भ्रष्टः) भ्रष्ट अर्थात् रदित हो गया था । (सः खलु) तब उसने ही (महिम्नः) भगवान् की प्रसन्नता के लिए भगवान् की महिमा की (इदं दिव्यदिव्यम्) यह आलौकिक (स्तवनम्) स्तुति की (अकार्षीत्) रचना की है ॥३८॥

(३६) महिम्नः स्तोत्र पाठ का माहात्म्य सुस्थित करने के लिए पुनरपि अग्रिम दो श्लोकों से इस स्तोत्र की महिमा का वर्णन करते हैं—

सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं

पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेताः ॥

व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः

स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम् ॥३९॥

अन्वितार्थः—(सुरवरमुनिपूज्यं) यह स्तोत्र सुरश्रेष्ठ मुनिश्रेष्ठों करके श्लाघनीय (स्वर्गमोक्षैकहेतुम्) तथा स्वर्ग और मुक्ति का उत्तम साधन है । (यदि मनुष्यः) इस स्तुति को यदि कोई मनुष्य (नान्यचेताः प्राञ्जलिः) अनन्यचित्त से बद्धाञ्जलि होकर (पठति) पढ़ता है तो (किन्नरैः स्तूयमानः) किन्नरों के द्वारा



श्लाघ्यमान अर्थात् स्तुतिप्राप्त होता हुआ (शिवसमीपं व्रजति) भगवान् शिव के समीप जाता है अर्थात् भगवत्समीप्य को प्राप्त करता है । अतः (पुष्पदन्तप्रणीतम्) पुष्पदन्ताचार्य प्रणीत (इदं स्तवनम्) यह स्तुति (अमोघम्) अव्यर्थ अर्थात् सफल है, कभी निष्फल नहीं जा सकता ॥३६॥

श्रीपुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन

स्तोत्रेण किल्बिषहरेण हरप्रियेण ।

कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन

सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्गहेशः ॥४०॥

अन्वितार्थः—(श्रीपुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन) श्रीपुष्पदन्त के मुख कमल से निकले हुए (किल्बिषहरेण) तथा पाठमात्र से पाप नाशक (हरप्रियेण) और भगवत्प्रिय (स्तोत्रेण) इस स्तोत्र के (समाहितेन) एकाग्रता के साथ (कण्ठस्थितेन पठितेन) कण्ठस्थ पाठ करने से (भूतपतिः महेशः) सर्वभूतप्राणिओं की रक्षा करने वाले महेश्वर शंकर भगवान् (सुप्रीणितः भवति) अत्यन्त प्रसन्न होते हैं ॥४०॥

(४१) भगवत्प्रीत्यर्थं पाठविधान के अभिप्राय से रचित इस स्तोत्र का भगवच्चरणों में समर्पण करते हैं—

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छङ्करपादयोः ।

अर्पिता तेन देवेशः प्रीयतां मे सदाशिवः ॥४१॥

इति श्री पुष्पदन्ताचार्य विरचितं महिम्नः स्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

अन्वितार्थः—(इति एषा) इस प्रकार यह (वाङ्मयी)वाणीमय (पूजा) पूजा स्तोत्रोपहार (श्रीमच्छङ्करपादयोः) भगवान् शङ्कर के चरणों में (अर्पिता) समर्पण करता हूं । (तेन) इस से (देवेशः सदाशिवः) भगवान् शङ्कर महादेव सदाभंगलमय सदाशिव (मे प्रीयताम्) मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥४१॥

इति महिम्नःस्तोत्र का भाषा-अन्वितार्थ समाप्त-हुआ ॥

यदक्षरं पदं भ्रष्टं मात्राहीनं च यद् भवेत् ।

तत् सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥



## श्रीशिवनीराजनस्तोत्रम् ५

ॐ नमः शिवाय ।

जय गङ्गाधर हर शिव जय गिरिजाधीश  
शिव जय गौरीनाथ त्वं मां पालय नित्यं  
त्वं मं पालय शम्भो कृपया जगदीश ॥

ॐ हर हर हर महादेव

( १ )

पारिजातहरिचन्दनकल्पद्रुमनिचयैः शिव कल्प०  
कुसुमितलतावितानैर्गुञ्जद्भ्रमरमयैः ।  
उन्मदकोकिलकूजितशिखिकेकारुचिरैः हर शिखि०  
सहकारैश्च कदम्बै २ भृङ्गवधमुखरैः ॥

ॐ हर हर हर महादेव ॥

( २ )

मृदितहंसयुगखेलत्सारसपरिवारैः शिव सार०  
भ्रमरयुवतिमुखराम्बुज २ सुभगैः कासारैः ।  
हारिणि कलधीताद्रेदेशे मणिरचिते हर देशे०  
भवने सुखमासीनं २ चिन्तामणिनिचिते ॥

ॐ हर हर हर महादेव ॥

( ३ )



पीठे गिरिजासहितं चन्द्रकलाधवलं शिवमिन्दुक०  
 विशरणशरणं देवं २ विपत्तयप्रबलम् ।  
 सम्पद्विधानरसिकं जगदङ्कुरकन्दं हर जग०  
 प्रणमामो वयमीशं २ चित्परमानन्दम् ॥  
 ॐ हर ३ महादेव

( ४ )

यस्याग्रेऽमरवध्वो विबुधाधिपसहिताः शिव विबु०  
 मुदितमनोहरवेषा २ लास्यकलामहिताः ।  
 ताथै ताथै तथेति विविधं नृत्यन्ति हर विविधं०  
 किङ्किणिनूपुरशिञ्जित २ रुचिरं वल्गन्ति ॥  
 ॐ हर ३ महादेव

( ५ )

तांधिक धिनक्तिथथेति विविधंवाद्यते शिव विविधं०  
 मृदङ्गममरी काचित् २ रुचिरं नादयते ।  
 वीणां काचिद्रमणी गानविदाभरणा हर गान०  
 गायति कलमपराचित् २ चिन्तितहरचरणा ॥  
 ॐ हर ३ महादेव ॥

( ६ )

रमया सहितो विष्णुर्ब्रह्मा सावित्र्या शिव ब्रह्मा०

जिष्णुर्नृत्यति भक्त्या २ मुदितमनाः शच्या ।

तुम्बुरुचितं मुरजं विविधं वादयते हर विविधं०

नारदमुनिरपि वीणां २ महतीं नादयते ॥

ॐ हर ३ महादेव

( ७ )

तं प्रसन्नवदनं प्रभुमिन्दुकलाभरणं शिवमिन्दु०

प्रणमामः करुणाब्धि २ तापत्रयहरणम् ।

देवासुरमणिमुकुटैर्निराजितचरणं हर नीरा०

भक्ताभीष्टदकल्पं २ कातरजनशरणम् ॥

ॐ हर ३ महादेव ॥

( ८ )

जटाकिरीटे गङ्गां चन्द्रकलां भाले शिवमिन्दुकलां०

नेत्रे प्विन्दुशिखिना २ नधरे स्मितममले ।

कण्ठे गरलं पाणौ वरमभयं शूलं हर वर०

पीयूषं कटिदेशे २ कृत्तिं च दुकूलम् ॥

ॐ हर ३ महादेव ॥

( ९ )

श्रीगिरिराजकिशोरीमङ्गे निदधानं शिवमङ्गे ०

निखिलसुरासुरमौलीन् २ चरणेऽमितदानम् ।

शम्भुं तडिदभिगौरं कृतनागाभरणं हर कृत ०

भजति स गच्छति मुक्तिं २ तिमिरापाकरणम् ॥

ॐ हर ३ महादेव ॥

( १० )

निरुपधिकरुणासिन्धुभीतत्राणपरः शिव भीत ०

दुःखक्षतये भूयात् २ कातरबन्धुवरः ।

यः श्वेतं यमभीतं स्मृतमात्रोऽरक्षत् हर स्मृतमा ०

मा भैषीरिति वादी २ कालं समतक्षत् ॥

ॐ हर ३ महादेव ॥

( ११ )

आनन्दाय महेशो युष्माकं भवतात् शिव युष्माकं ०

जन्मजरामृतिशोकात् २ करुणानिधिरवतात् ।

येन सुरासुरनिवहस्त्रातो विषभीतो हर त्रातो ०

नीलकण्ठ इति भूयो २ निगमगणैर्गीतः ॥

ॐ हर ३ महादेव ॥

( १२ )



यः सृष्ट्यादिविधानं ब्रह्माच्युतरुद्रैः शिव ब्रह्मा०  
 निजरूपैस्तनुते यो २ दुर्ज्ञेयः क्षुद्रैः ।  
 तं प्रकाशसुखमच्छं बांधावधिमोशं हर बाधा०  
 तनुभेदैरिव भिन्नं २ श्रयत धियामीशम् ॥  
 ॐ हर ३ महादेव ॥

( १३ )

॥ ॐ शान्तिः ३ ॥

इति श्रीहृषीकेशकैलासनिवासिविद्वद्वरिष्ठब्रह्मनिष्ठपरमहंस-  
 परिम्राजकाचार्य्य १०८ श्रीमत्स्वामिप्रकाशानन्दपुरी-  
 भिविनिर्मितं शिवनीराजनस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

## ध्यानम् ६

वन्दे देवमुमापतिं सुरगुरुं वन्दे जगत्कारणं  
 वन्दे पद्मगभूषणं मृगधरं वन्दे पशूनां पतिम् ।  
 वन्दे सूर्यशशाङ्कवह्निनयनं वन्दे मुकुन्दप्रियं  
 वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥१॥  
 शान्तं पद्मासनस्थं शशिधरमुकुटं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं  
 शूलं ब्रज्रं च खड्गं परशुमयदं दक्षिणाङ्गं वहन्तम् ।  
 नागं पाशं च घण्टां डमरुकसहितां साङ्कुशां वामभागे  
 नानालङ्कारदीप्तं स्फटिकमणिनिभं पार्वतीशं नमामि ॥२॥

कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम् ।

सदा वसन्तंहृदयारविन्दे भवं भवानीसहितं नमामि ॥ ३

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे

सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी ।

लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं

तदपि तव गुणनामीश पारं न याति ॥ ४

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।

त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥ ५

करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा

श्रवणनयनजं वा मानसं वाऽपराधम् ।

विहितमविहितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व

जयजय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो ॥ ६

चन्द्रोद्भासितशेखरे स्मरहरे गङ्गाधरे शङ्करे

सर्पैर्भूषितकण्ठकर्णविवरे नेत्रोत्थवैश्वानरे ।

दन्तित्वक्कृतसुन्दराम्बरधरे त्रैलोक्यसारे हरे

मोक्षार्थं कुरु चित्तवृत्तिमचलामन्यैस्तु किं कर्मभिः ॥ ७

हरिः ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि ।

तन्नोरुद्रः प्रजोदयात् ॥

## मन्त्रपुष्पाञ्जलिः ७

हरिः ॐ

नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्र मूर्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे ।  
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ॥

( १ )

विष्णुब्रह्मेन्द्रदेवै रजतगिरितटात्प्रार्थितो योऽवतीर्य  
शाक्याद्युदामकण्ठीरवनखरकराघातसञ्जातमूर्च्छाम् ।  
छन्दोधेनुं यतीन्द्रः प्रकृतिमगमयत्सक्तिपीयूषवर्षैः  
सोऽयं श्रीशङ्करार्यो भवदवदहनात्पातुलोकानजस्रम् ॥

( २ )

पूर्णः पीयूषभानुर्भवमरुतपनोद्दामतापाकुलानां  
प्रोढाज्ञानान्धकारावृतविषमपथभ्राम्यतामंशुमाली ।  
कल्पः शाखी यतीनां विगतधनसुतादीषणानां सदा नः  
पायाच्छ्रीपद्मपादादिममृनिसहितः श्रीमदाचार्यवर्यः ॥

( ३ )

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवल ज्ञानमूर्तिं  
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ।  
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं  
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥

( ४ )



नारायणं पद्मभवं वसिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्रपराशरं च ।  
व्यासं शुकं गौडपदं महान्तं गोविन्दयोगीन्द्रमथास्यशिष्यम् ॥  
श्रीशङ्कराचार्यमथास्य पद्मपादं च हस्तामलकं च शिष्यम् ।  
तं तोटकं वार्तिककारमन्यानस्मद्गुरुन्संततमानतोऽस्मि ॥

( ५ )

विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतं  
पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया ।  
यः साक्षात्कुरुते प्रबोधसमये स्वात्मानमेवाद्वयं  
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥

( ६ )

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।  
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

( ७ )

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः ।  
गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

( ८ )

श्रुतिस्मृतिपुराणानामालयं करुणालयम् ।  
नमामि भगवत्पादं शङ्करं लोकशङ्करम् ॥

( ९ )

शङ्करं शङ्कराचार्यं केशवं बादरायणम् ।

सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः ॥ १० ॥

ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्तिभेदविभागिने ।

व्योमवद्व्याप्तदेहाय दक्षिणामूर्तये नमः ॥ ११ ॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्म्माणि प्रथमान्यासन् ।

ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥

( १२ )

राजाधिराजाय प्रसह्यसाहिने नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे ।

( १३ )

स मे कामान् कामकामाय मह्यम् । कामेश्वरो वैश्रवणोददातु ॥

( १४ )

कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः ॥

( १५ )

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुस्त विश्वतस्पात् ।

सग्वाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमि जनयन् देव एकः ॥

( १६ )

हरिः ॐ तत्सत्-मन्त्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि — नानासुगन्ध-

पुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च । भक्त्या दत्तानि पूजार्थ-

गृहाण परमेश्वर ॥ १७ ॥

## शिवनामावलि: ८

महादेव शिव शङ्कर शम्भो उमाकान्त हर त्रिपुरारे,  
मृत्युञ्जय वृषभध्वज शूलिन् गङ्गाधर मृड मदनारे ॥ हर  
शिव शङ्कर गौरीशं वन्दे गङ्गाधरमीशम्, रुद्रं पशुपतिमीशानं  
कलये काशीपुरमाथं ॥ जय शम्भो, जय शम्भो, शिवगौरी  
शङ्कर जय शम्भो, जय शम्भो, जय शम्भो, शिव गौरी  
शङ्कर जय शम्भो ॥

शिव शिवेति शिवेति शिवेति वा हर हरेति हरेति  
हरेति वा ॥ भव भवेति भवेति भवेति वा मृड मृडेति मृडेति  
मृडेति वा ॥ भज मनः शिवमेव निरन्तरम् ॥





अथ पञ्चदशोऽध्यायः

## श्रीभगवानुवाच

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।

छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥१॥

उसके उपरान्त, श्रीकृष्ण भगवान् फिर बोले कि, हे अर्जुन ! आदि पुरुष, परमेश्वर रूप, मूलवाले और ब्रह्मा रूप मुख्य शाखा वाले जिस संसार रूप पीपल के वृक्ष को अविनाशी कहते हैं तथा जिसके वेद पत्ते कहे गये हैं, उस संसार रूप वृक्ष को, जो पुरुष मूल सहित तत्त्व से जानता है, वह वेद के तात्पर्य को जानने वाला है ॥१॥

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा

गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ।

अधश्च मूलान्यनुसंततानि

कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ॥२॥

और हे अर्जुन ! उस संसार वृक्ष की तीनों गुण रूप जलके द्वारा बढ़ी हुई एवं विषय भोगरूप कोपलोंवाली, देव, मनुष्य और तिर्यक् आदि योनिरूप शाखायें नीचे और ऊपर सर्वत्र फैली हुई हैं तथा मनुष्य योनि में कर्मों के अनुसार बांधनेवाली अहंता, ममता और वासनारूप जड़ें भी नीचे और ऊपर सभी लोकों में व्याप्त हो रही हैं ॥२॥

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते

नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठ्य ।

अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल-

ममङ्गशस्त्रेण दृढेन क्षित्वा ॥३॥

परन्तु, इस संसार वृक्ष का स्वरूप जैसा कहा है, वैसा यहां विचारकाल में नहीं पाया जाता है क्योंकि न तो इसका आदि है और न अन्त है तथा न अच्छी प्रकार से स्थिति ही है, इसलिये इस अहंता, ममता और वासना रूप अति दृढ़ मूलों वाले संसार रूप पीपल के वृक्ष को दृढ़ वैराग्यरूप शस्त्र द्वारा काटकर स्थावर, जङ्गमरूप यावन् मात्र संसार के चिन्तनका तथा अनादिकाल से, अज्ञानके द्वारा दृढ़ हुई अहंता, ममता और वासना रूप मूलों का,

त्याग करना ही संसार वृक्ष का अवान्तर 'मूलों के सहित काटना' है ।

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं

यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः ।

तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये

यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥४॥

उसके उपरान्त उस परमपदरूप परमेश्वर को, अच्छी प्रकार खोजना चाहिये कि जिसमें गये हुए पुरुष फिर पीछे संसार में नहीं आते हैं और जिस परमेश्वर से यह पुरातन संसार वृक्ष की प्रवृत्ति विस्तार को प्राप्त हुई है, उस ही आदिपुरुष नारायण के में शरण हूं, इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके ॥४॥

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा

अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।

द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-

र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥५॥

नष्ट हो गया है, मान और मोह जिनका तथा



जीत लिया है, आसक्तिरूपदोष जिनने और परमात्मा के स्वरूप में है निरन्तर स्थिति जिनकी तथा अच्छी प्रकार से नष्ट हो गई है कामना जिनकी, ऐसे वे सुख दुःख नामक द्वन्द्वों से विमुक्त हुए ज्ञानीजन, उस अविनाशी परमपद को प्राप्त होते हैं ॥५॥

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।  
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥६॥

और उस स्वयम् प्रकाशमय परमपद को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चन्द्रमा और न अग्नि ही प्रकाशित कर सकता है तथा जिस परमपद को प्राप्त होकर मनुष्य पीछे संसार में नहीं आते हैं वही मेरा परमधाम है ॥६॥

ममैवांशो जीवलोकं जीवभूतः सनातनः ।  
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥७॥

और हे अर्जुन ! इस देह में यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है और वही इन त्रिगुणमयी माया में स्थित हुई, मनसहित पाँचों इन्द्रियों को आकर्षण करता है ॥७॥

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।

गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ॥८॥

कैसे कि, वायु गन्ध के स्थान से गन्ध को, जैसे ग्रहणकरके ले जाता है, वैसे ही देहादिकों का स्वामी, जीवात्मा भी जिस पहिले शरीर को त्यागता है, उससे इन मनसहित इन्द्रियों को ग्रहण करके, फिर जिस शरीर को प्राप्त होता है, उसमें जाता है ॥८॥

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।

अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥९॥

और उस शरीर में स्थित हुआ, यह जीवात्मा श्रोत्र, चक्षु और त्वचा को तथा रसना, घ्राण और मन को आश्रय करके अर्थात् इन सबके सहारे से ही विषयों को सेवन करता है ॥९॥

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा

गुणान्वितम् ।

विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥१०॥

परन्तु, शरीर छोड़कर जाते हुए को अथवा शरीर में स्थित हुए को और विषयों को भोगते हुए को अथवा तीनों गुणों से युक्त हुए को भी, अज्ञानीजन नहीं जानते हैं, केवल ज्ञानरूप नेत्रों वाले ज्ञानीजन ही तत्त्व से जानते हैं ॥१०॥

यतन्तो योगिन श्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यव

स्थितम् ।

यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं

पश्यन्त्यचेतसः ॥११॥

क्योंकि, योगीजन भी अपने हृदय में स्थित हुए, इस आत्मा को यत्न करते हुए ही तत्त्व से जानते हैं और जिन्होंने अपने अन्तःकर को शुद्ध नहीं किया है, ऐसे अज्ञानीजन तो यत्न करते हुए भी इस आत्मा को नहीं जानते हैं ॥११॥

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।

यच्चन्द्रमसियच्चाग्नौतत्तेजो विद्धि मामकम् ॥१२॥

और हे अर्जुन ! जो तेज सूर्य में स्थित हुआ सम्पूर्ण जगत को प्रकाशित करता है तथा जो तेज चन्द्रमा



में स्थित है और जो तेज अग्नि में स्थित है, उसको तू मेरा ही तेज जान ॥१२॥

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।

पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा

रसात्मकः ॥१३॥

और मैं ही पृथ्वी में प्रवेश करके, अपनी शक्ति से सब भूतों को धारण करता हूँ और रसस्वरूप अर्थात् अमृतमय चन्द्रमा, सम्पूर्ण औषधियों को अर्थात् वनस्पतियों को पुष्ट करता हूँ ॥१३॥

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।

प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥१४॥

तथा मैं ही सब प्राणियों के शरीर में स्थित हुआ, वैश्वानर अग्नि रूप होकर, प्राण और अपान से युक्त हुआ, चार प्रकार के अन्न को पचाता हूँ ॥१४॥

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो

मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।

वैदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो

वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥१५॥

और मैं ही सब प्राणियों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से स्थित हूँ तथा मेरे से स्मृति, ज्ञान और अपोहन होता है और सब वेदों द्वारा मैं ही जानने के योग्य हूँ तथा वेदान्त का कर्ता और वेदों को जानने वाला भी मैं ही हूँ ॥१५॥

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।

क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥१६॥

तथा हे अर्जुन ! इस संसार में नाशवान् और अविनाशी भी यह दो प्रकार के पुरुष हैं, उनमें संपूर्णभूत प्राणियों के शरीर तो नाशवान् और जीवात्मा अविनाशी कहा जाता है ॥१६॥

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।

यो लोकत्रयमाविश्य विभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥१७॥

तथा उन दोनों से, उत्तम पुरुष तो अन्य ही है कि जो तीनों लोकों में प्रवेश करके, सबका धारण, पोषण

करता है एवं अविनाशी परमेश्वर और परमात्मा, ऐसे कहा गया है ॥१७॥

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।

अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥१८॥

क्योंकि मैं नाशवान्, जड़वर्ग क्षेत्र से तो सर्वथा अतीत हूँ और माया में स्थित अविनाशी जीवात्मा से भी उत्तम हूँ, इसलिये लोक में और वेद में भी पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूँ ॥१८॥

यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ।

स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥१९॥

हे भारत ! इस प्रकार तत्त्व से जो ज्ञानी पुरुष मेरे को पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकार से निरन्तर मुझ वासुदेव परमेश्वर को ही भजता है ॥१९॥

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ ।

एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥२०॥

हे निष्पाप अर्जुन ! ऐसे यह अति रहस्ययुक्त



गोपनीय शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया, इसको तत्त्व से जान कर मनुष्य ज्ञानवान् और कृतार्थ होजाता है अर्थात् उसको और कुछ भी करना शेष नहीं रहता ।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां  
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तमयोगो  
नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

इस अध्याय में भगवान् ने अपना परम गोपनीय प्रभाव भली प्रकार से कहा है । जो मनुष्य उक्त प्रकार से भगवान् को सर्वोत्तम समझ लेता है, फिर उसका मन एक क्षण भी भगवान् के चिन्तन का त्याग नहीं कर सकता, क्योंकि जिस वस्तु को मनुष्य उत्तम समझता है, उसी में उसका प्रेम होता है और जिसमें प्रेम होता है, उसी का चिन्तन होता है, अतएव सबका मुख्य कर्तव्य है कि भगवान् के परमगोपनीय प्रभाव को भली प्रकार समझने के लिये नाशवान्, क्षणभंगुर संसार की आसक्तिका सर्वथा त्याग करके एवं परमात्मा की शरण होकर भजन और सत्संग की ही विशेष चेष्टा करें ।





## लिंगाष्टकम्

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

- ब्रह्मपुरासुराचितलिंगं निर्मलभाषितशोभितलिङ्गम् ।  
जन्मजदुःखविनाशकलिंगं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ॥१
- देवमुनिप्रवराचितलिङ्गं कामदहं करुणाकरलिङ्गम् ।  
रावणदर्प विनाशनलिंगं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ॥२
- सर्वभृगन्धिमूलेपितलिंगं बुद्धिविवर्धनकारणलिङ्गम् ।  
सिद्धसुरासुरवन्दितलिंगं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ॥३
- कनकमहामणिभूषितलिंगं फणिपतिवेष्टितशोभितलिङ्गम् ।  
दक्षसुयज्ञविनाशनलिंगं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ॥४
- कंकुमचन्दनलेपितलिङ्गं पङ्कजहारसुशोभितलिङ्गम् ।  
सञ्चितपापविनाशनलिंगं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ॥५
- देवगणाचितसेवितलिंगं भावैर्भवितभिरेव च लिंगम् ।  
दिनकर कोटिप्रभाकरलिंगं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ॥६
- अष्टदलोपरि वेष्टितलिंगं सर्वसमुद्भवकारणलिंगम् ॥  
अष्टदरिद्रविनाशितलिंगं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ॥७
- सुरगुरुसुरवरपूजितलिंगं सुरवनपुष्पसदाचितलिंगम् ।  
परात्परं परमात्मकलिंगं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ॥८
- लिंगाष्टकमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ ।  
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥९
- इति श्रीलिंगाष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

## पशुपत्यष्टकम्

० श्री गणेशाय नमः ०

- पशुपतीदुर्पति धरणीपति भुजगलोकपति च सतीपतिम् ।  
प्रणतभक्तजनातिहरं परं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥१॥
- न जनको जननी न च सोदरो न तनयो न च भूरिवलं कुलम् ।  
अवति कोऽपि न कालवशंगतं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥२॥
- रूर्जडिडिमवाद्यविलक्षणं मधुरपञ्चमनाद विशारदम् ।  
प्रमथभूतगणैरपि सेवितं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥३॥
- रणदं सुखदं शरणान्वितं शिव शिवेति शिवेति नृतं नृणाम् ।  
अभयदं करुणावरुणालयं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥४॥
- रशिरोरचितं मणिकुण्डलं भुजगहारमुदं वृषभध्वजम् ।  
चित्तिरजोधवलीकृतविग्रहं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥५॥
- वविनाशकरं शशिशेखरं सततमध्वरभाजिफलप्रदम् ।  
प्रलयदग्धसुरामुरमानवं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥६॥
- मपास्य चिरं हृदि संस्थितं मरणजन्मजराभयपीडितम् ।  
जगदुदीक्ष्य समीपभयाकुलं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥७॥
- विरञ्चिसुराधिपपूजितं यमजनेशधनेशनमस्कृतम् ।  
त्रिनयनं भुवनत्रितयाधिपं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥८॥
- पशुपतेरिदमष्टकमद्भुतं विरचितं पृथिवीपतिमूरिणा ।  
पठति संश्रृणुते मनुजः सदा शिवपुरीं वसते लभते मुदम् ॥९॥
- इति श्रीपशुपत्यष्टकं सम्पूर्णम् ।



परमार्थ निकेतन

पुस्तकालय

शिवषडक्षरस्तोत्रम्

श्री गणेशाय नमः

श्रीङ्कारं विन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।

कामदं मोक्षदं चैव श्रीङ्काराय नमो नमः ॥१॥

नमन्ति ऋषयो देवा नमन्त्यप्सरसां गणाः ।

नरा नमन्ति देवेशं नकाराय नमो नमः ॥२॥

महादेवं महात्मानं महाध्यानपरायणम् ।

महापापहरं देवं मकाराय नमो नमः ॥३॥

शिवं शान्तं जगन्नाथं लोकानुग्रहकारकम् ।

शिवमेकपदं नित्यं शिकाराय नमो नमः ॥४॥

वाहनं वृषभो यस्य वामुकिः कण्ठभूषणम् ।

वामे शक्तिधरं देवं वकाराय नमो नमः ॥५॥

यत्र-यत्र स्थितो देवः सर्वव्यापी महेश्वरः ।

यो गुरुः सर्वदेवानां यकाराय नमो नमः ॥६॥

षडक्षरमिदं स्तोत्रं यः पठेच्छिवसन्निधौ ।

शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥७॥

इति श्रीरुद्रयामले उमामहेश्वरसंवादे शिवषडक्षरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।





---

प्रकाशक :—

पूर्णानन्द आश्रम, शिवालय

पोस्ट—ऋषिकेश  
(देहरादून) उ० प्र०

---

---

मुद्रक--कावेरी प्रिन्टर्स प्रा० लि०, नई दिल्ली-२ फोन : २७२०५०